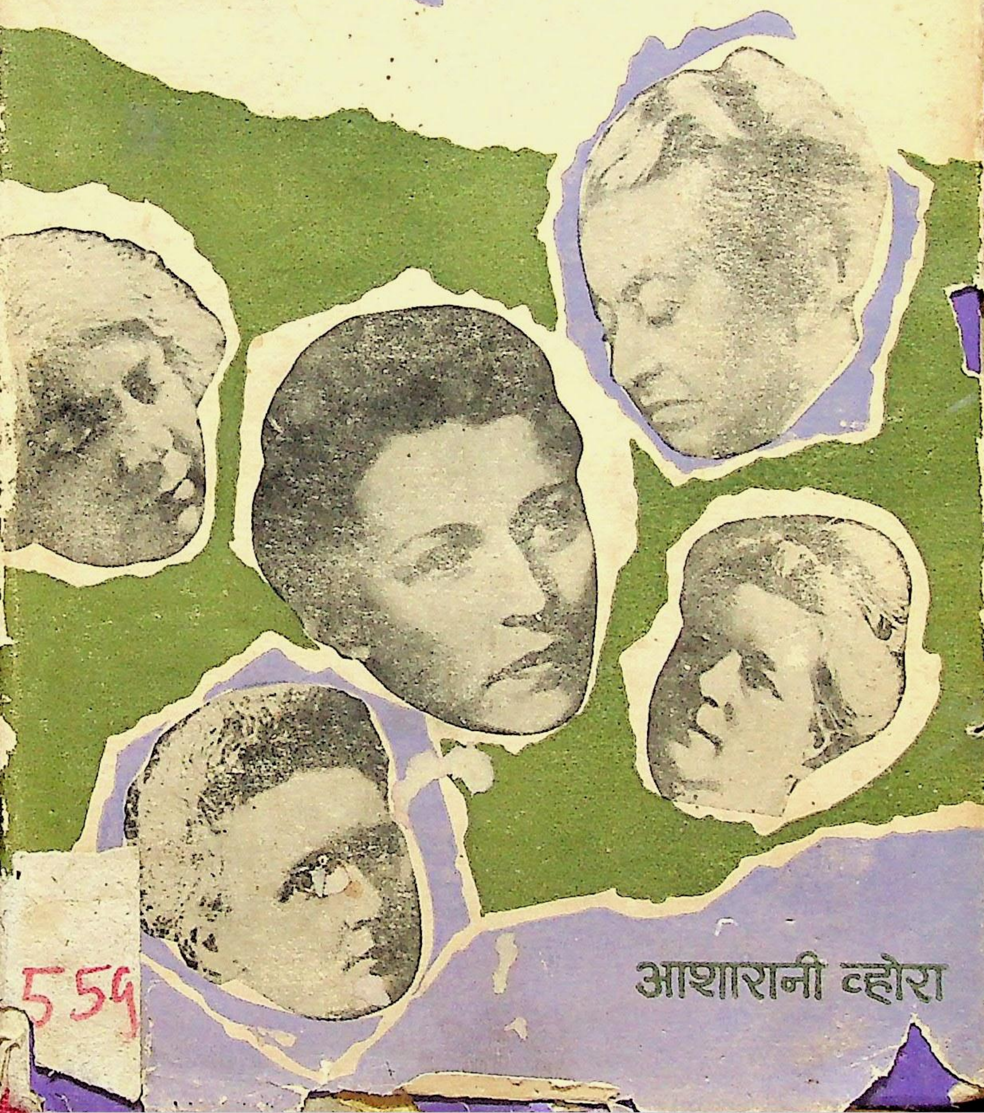
नोबल पुरस्कार-विजेता महिलाएं



आशारानी व्होरा

प्रस्तुत पुस्तक में विश्व-भर की साहित्य, शांति और विज्ञान के क्षेत्रों में उल्लेखनीय सेवा के उपलक्ष्य में नोबल पुरस्कार से सम्मानित महिलाओं के परिचय तथा उनके द्वारा किए गए महत्वपूण कार्यों का विवरण दिया गया है। इसमें अपने लक्ष्य के प्रति उनकी लगन, सूझ-बूझ, और अपनी प्रतिभा के रचनात्मक उपयोग से मानव-मात्र के कल्याण में उनके योगदान का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही नोबल पुरस्कार देने वाले संस्थान और नोवल पुरस्कार के संस्थापक अल्फ्रेड नोवल की जीवनी दी गई है, जो अपने-आप में बहुत ही रोचक है। इस पुस्तक की लेखिका श्रीमती व्होरा ने इनमें से जीवित पुरस्कार-विजेताओं से खुद पत्र-व्यवहार करके तथा शेष अन्यों के बारे में प्रामाणिक स्थानों से पूछ-ताछ कर सभी के बारे में जिस तरह सही तथ्य, चित्र आदि प्राप्त किए वह प्रशंसनीय है।

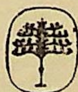
यह पुस्तक महिलाओं के लिए ही नहीं, सच्ची लगन, आस्था और महत्वाकांक्षा को लेकर जीवन के किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति चाहनेवाले सभी तरह के लोगों के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती है।

799



नोबल पुरस्कार-विजेता महिलाएं

आशारानी व्होरा



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, द्वारा कार्यान्वित प्रकाशकों की योजना के अंतर्गत प्रकाशित

पुनरीक्षिका : श्रीमती तारा तिक्कू

मूल्य : सात रुपये (7·00)

☐ दूसरा संस्करण 1975

NOBEL PURASKAR-VIJETA MAHILAEN (Life-sketches)
by Asha Rani Vohra

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के तत्त्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्चकोटि की हों, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महंगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएं बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की निश्चित संख्या में प्रतियां खरीदकर उन्हें मदद पहुंचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'नोबल पुरस्कार-विजेता महिलाएं' इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। पुस्तक में साहित्य, विज्ञान और शांति के क्षेत्रों में विश्व-भर की नोबल पुरस्कार से सम्मानित महिलाओं का परिचय तथा उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों का विवरण सरल एवं रोचक शैली में दिया गया है। पुस्तक सचित्र है। इसके लेखन और कापीराइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर लोकप्रिय होगी।

(गोपाल शर्मा)
निदेशक

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय,
(शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय,
भारत सरकार नई, दिल्ली)

उन सभी को
जो कहीं भी कुछ प्रकाश में लाने के लिए प्रयत्नशील हैं ।

अपनी बात

पिछले दस वर्ष से महिला-उपलब्धियों के क्षेत्र में कार्य करते हुए मेरा ध्यान विश्व की नोबल पुरस्कार-विजेता महिलाओं पर भी जाना स्वाभाविक ही था। स्टाकहोम में नोबल फाउंडेशन को पत्र लिखकर उनसे चित्रों व संदर्भ-सूचनाओं सम्बन्धी सहायता के लिए अनुरोध किया। शीघ्र ही उत्तर प्राप्त हो गया। उन्होंने विज्ञान, साहित्य और विश्व-शांति में पुरस्कार प्राप्त सभी महिलाओं की सूची और जीवित महिलाओं के पते भेज दिए। साथ ही दिल्ली में किस पुस्तकालय से फाउंडेशन के वार्षिक प्रकाशन—ले प्री नोबल—उपलब्ध हैं, यह सूचना भी। पूरे चित्रों का सेट भेजने की व्यवस्था सम्बन्धी निर्देश भी उसमें था, जिसके अनुसार स्वीडिश दूतावास के सचिव से सम्पर्क स्थापित कर उनकी सहायता से चित्र भी मंगवा लिए गए।

एकबारगी लगा, यह सब आसानी से हो गया तो अगला काम भी आसानी से हो जाएगा। पर ऐसा नहीं हुआ। फाउंडेशन ने जिस 'इंडियन ऐकेडेमी आफ साइंस' का हवाला दिया था, वहां से कुल तीन नाम ही मिल सके। केवल विज्ञान में पुरस्कृत पांचों नाम भी नहीं—कारण, सन् 1962 तक के प्रकाशन ही वहां उपलब्ध थे। इसके बाद के नोबल-लेक्चर्स आदि अभी छपकर आए ही न थे। चौथे एक जीवित नाम रसायनज्ञ डोरोथी क्रोफुट हॉजकिन का पता सूची में था, उनसे पत्र-व्यवहार कर काम चला लिया गया। विज्ञान के पांचवें नाम और साहित्य व विश्व-शान्ति के शेष सभी नामों के लिए राजधानी की शायद ही कोई लाइब्रेरी बची होगी, जहां मैंने इस सामग्री की तलाश न की हो। फिर भी प्राप्त सामग्री से संतोष हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता। लेकिन जो काम उठाया था उसे पूरा किए विना भी संतोष कैसे होता?

दूसरी मुख्य कठिनाई मेरे सामने थी, विज्ञान मेरा विषय न होने के कारण उसके नामों से सम्बन्धित कार्य को समझने की। इसके लिए अपने सुपुत्र भैषज्य-विज्ञानी डा० शशिभारत व्होरा से तो सहायता मिली ही, इन लेखों को पांडु-लिपि के लिए अन्तिम रूप देने में श्री हरि ओम चावला ने भी पर्याप्त मेहनत

की। फिर 'विज्ञान प्रगति' के सह-संपादक श्री मनमोहन मिश्र ने भी अपनी व्यस्तता में से समय निकालकर इन्हें देखा व अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे लाभान्वित किया।

नोबल फाउंडेशन के सेक्रेटरी श्री इलसी वीरंट, स्वीडिश दूतावास के सेक्रेटरी श्री फोल्के लोफग्रेन तथा अन्य सब सहयोगियों की मैं हृदय से आभारी हूं। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़ के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूं, जिनके स्वीकार और प्रयत्न से यह कार्य पुस्तक रूप में पाठकों के सम्मुख आ पाया। पूरा संतोष तो शायद किसी भी कार्य से संभव नहीं है, पर इस कार्य में आई कठिनाइयों का ऊपर जो ज़िक्र मैंने किया है, उस पृष्ठभूमि में एक यथासंभव प्रयत्न के रूप में ही यह आपके हाथों में दे रही हूं।

—आशारानी व्होरा

10, न्यू मार्केट,
वेस्ट पटेल नगर,
नई दिल्ली-8

क्रम

अल्फ्रेड नोबल और उनका पुरस्कार

(1833-1896)

कुछ लोग होते हैं जो स्वयं जीवन-भर दुःखी रहते हैं, इसलिए दूसरों का दुःख समझते हैं और इसीलिए दूसरों के हित में अपना सब कुछ देकर अंत में यश के भागी बन जाते हैं।

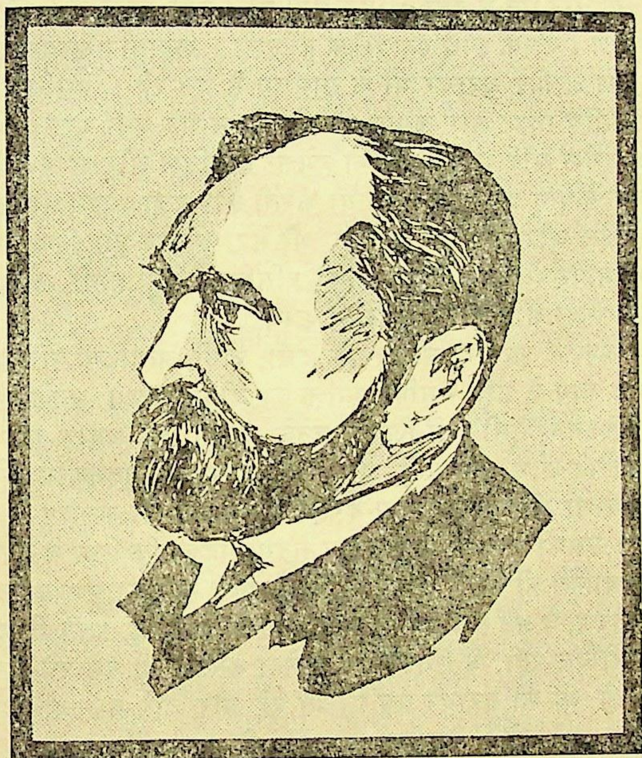
आविष्कार और मानवीय संवेदना का पर्याय ऐसा ही एक नाम है—अल्फ्रेड नोबल। अल्फ्रेड नोबल, जो बचपन से रोगी था, जीवन-भर रोगी और दुःखी रहा, फिर भी जी-तोड़ मेहनत कर आविष्कारों में जुटा रहा और फिर अपनी ज़िन्दगी-भर की कमाई का विज्ञान, साहित्य और विश्व-शान्ति के पक्ष में वसीयतनामा करके विश्व-इतिहास में अमर हो गया।

नोबल पुरस्कार का नाम आज संसार का प्रायः हर नागरिक जानता है क्योंकि यह विश्व का सबसे बड़ा प्रतिष्ठा-पुरस्कार है। पर जिसने इस पुरस्कार की स्थायी व्यवस्था की, उस अल्फ्रेड नोबल की जीवन-गाथा से अधिक लोग परिचित नहीं है। इसलिए नोबल पुरस्कार-विजेता विश्वविख्यात महिलाओं की कीर्तिगाथा लिखने से पूर्व अल्फ्रेड नोबल और नोबल पुरस्कार के बारे में जानकारी देना भी समीचीन होगा।

अल्फ्रेड का पूरा नाम अल्फ्रेड बर्नार्ड नोबल था। इनके पूर्वज 'नोबिलियस' कहलाते थे। पितामह एक सेना-चिकित्सक थे। वे अपने नाम के आगे 'नोबिलियस' की जगह 'नोबल' लिखने लगे थे तो वंश-परम्परा में आगे नोबल ही चल पड़ा। अल्फ्रेड के पिता इमानुएल नोबल ने कोई विशेष शिक्षा नहीं पाई थी। चौदह वर्ष की अवस्था में ही स्कूल छोड़कर उन्हें एक जहाज़ में केबिन-व्वाय बनना पड़ा। तीन वर्ष की इस नौकरी के बाद उन्होंने और भी कई छोटी-मोटी नौकरियां कीं, जिनमें व्यस्त रहने के बावजूद कुछ न कुछ समय निकालकर

आर्कीटेक्चर और मैकेनिज़्म का अध्ययन किया। स्वतन्त्र रूप से 'आर्कीटेक्ट' और 'बिल्डर' का व्यवसाय भी करते रहे। फिर स्टाकहोम के एक विज्ञान कालेज में शिक्षक हो गए। आविष्कारों की ओर उनकी विशेष अभिरुचि थी। विस्फोटक पदार्थों पर प्रयोग करते-करते संयोगवश उन्होंने चीर-फाड़ के यंत्रों और रबड़ के ऐसे गद्दों, जिनसे रोगियों और ज़ख्मियों को आराम मिल सके, का भी आविष्कार कर डाला। जहाज़ों की निर्माण-कला में भी दिलचस्पी लेते रहे, पर उनका विशेष झुकाव शक्तिशाली विस्फोटकों के आविष्कार की ओर ही था।

इमानुएल नोबल अपने विस्फोटकों के परीक्षण के सिलसिले में नाइट्रोग्लैसरीन तथा अन्य रसायनों का परीक्षण कर रहे थे कि अकस्मात् हुई दो दुर्घटनाओं ने उनके जीवन को बहुत प्रभावित किया। पहली दुर्घटना 1837 में स्टाकहोम में हुई। इसमें इतना भयानक विस्फोट हुआ कि मकानों की खिड़कियां चूर हो गईं और उसके धमाके से कई लोग विक्षिप्त हो गए। उनकी प्रयोगशाला करीब-करीब उड़कर गायब हो गई थी और वे दिवालिया हो गए थे। इस आघात के बाद मित्रों के परामर्श से वे रूस चले गए। वहीं प्रयोगशालाओं में उन्होंने समुद्री सुरंगों पर परीक्षण आरम्भ कर दिया। क्रीमिया के युद्ध तक वे अपने परिवार के साथ रूस में ही रहे। इस दौरान उन्होंने कुछ ऐसे आविष्कार किए जो नौसेना के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थे। युद्धकाल में इमानुएल के परिवार के अन्य सभी सदस्य स्वीडन लौट आए थे। केवल एक पुत्र ल्वीडिंग वहीं रह गया जो आगे चलकर रूस का एक प्रख्यात इंजीनियर हुआ। बाकू के अक्षय पेट्रोल-स्रोतों का पता ल्वीडिंग ने ही लगाया था। विस्फोट की दूसरी दुर्घटना भी 1864 में स्वीडन में ही हुई। इसमें उनके सबसे छोटे पुत्र एमिल के शरीर की धज्जियां उड़ गईं और सारा स्टाकहोम हिल गया। इस दूसरे आघात से इमानुएल का मस्तिष्क विकृत हो गया। फिर अपने शेष जीवन में वे कुछ भी न कर सके। इन दोनों घटनाओं और पिता के जीवन के उतार-चढ़ावों का असर अल्फ्रेड नोबल पर अपने दूसरे भाइयों की अपेक्षा अधिक पड़ा।



अल्फ्रेड नोबल
नोबल पुरस्कार के संस्थापक

इमानुएल की पत्नी का नाम था—कैरोलीन हेनरिएटा आलसिल। उनके चार लड़के हुए—राबर्ट, ल्वीडिंग, अल्फ्रेड और एमिल। अल्फ्रेड का जन्म 1833 में स्टाकहोम में हुआ। यह बालक शरीर से बहुत दुर्बल और मन से बहुत भावुक था। कभी सर्दी, कभी ज्वर और हमेशा अजीर्ण। उसके साथ स्नायविक दुर्बलता। लगातार अस्वस्थ रहने के कारण अल्फ्रेड बराबर मां के सामीप्य में बने रहे। इसलिए मां-पुत्र में असीम प्यार और लगाव था जो जीवन-भर बना रहा। मां अपने इस दुर्बल और भावुक बेटे को हमेशा बाइबिल और अन्य धर्मग्रंथों से प्रेरक कथाएं पढ़-पढ़कर सुनाया करती और कहा करती थी कि शरीर से दुर्बल और अस्वस्थ रहते हुए भी मेरा अल्फ्रेड एक दिन संसार का एक महान व्यक्ति बनेगा। उसकी प्रसिद्धि ही नहीं होगी, लोग उसका नाम श्रद्धा और आदर से लिया करेंगे।

अल्फ्रेड का पूरा जीवन एक दुखी, रोगी, अत्यधिक परिश्रमी और अपने कार्य के प्रति समर्पित व्यक्ति का जीवन रहा। उनके जीवन में कई घटनाएं ऐसी घटीं जिनसे उनके जीवन का प्रवाह एक विशेष दिशा की ओर मुड़ गया और वे अत्यधिक संवेदनशील हो उठे। युवावस्था में उन्होंने एक सुन्दरी से प्रेम किया जो अल्पायु में ही मर गई। उसकी मृत्यु से उन्हें इतना सदमा पहुंचा कि फिर वे जीवन-भर अविवाहित ही रहे। जीवन में किसी अन्य स्त्री का प्रेम न पा सकने के कारण, वे अंत तक अपनी मां के उपासक बने रहे, इतने कि जब तक मां जीवित रहीं, वे उनके लिए 'छोटा बालक' ही बने रहे। वे जहां भी रहे, मां को बराबर पत्र लिखते रहे और बार-बार दौड़कर उनसे मिलने जाते रहे। वात्सल्य का स्रोत ही अल्फ्रेड के जीवन में पूरे वेग से बहता था। उनके सम्पर्क में आने वाले और उनसे प्रेमपूर्ण बर्ताव करने वाले अन्य सभी व्यक्तियों के प्रति उनकी राय थी कि वे उनके धन के कारण ही उनसे प्रेम करते हैं, अन्यथा नहीं।

अपने पिता की तरह ही रसायन, भौतिकशास्त्र और यंत्रविज्ञान अल्फ्रेड के प्रिय विषय थे। सत्रह वर्ष की आयु में यंत्रविज्ञान के विशेष अध्ययन के लिए वे अमरीका गए। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जान एरिक्सन के सान्निध्य में वहां उन्होंने नौसेना-सम्बन्धी यंत्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त

किया। उन्हीं दिनों एरिक्सन ने एक नये ढंग के इंजन का आविष्कार किया था। इस इंजन की परीक्षा के लिए 11 फरवरी, 1853 का दिन निश्चित हुआ था। इस इंजन को 'एरिक्सन' नाम के वाष्पपोत में लगाकर समुद्र में उतारना था। 'एरिक्सन' उतारा गया। कुछ दूर चला और फिर भयंकर तूफान में उठी प्रचण्ड लहरों की चपेट में आकर डूब गया। इसके साथ ही आविष्कर्ता एरिक्सन की सारी आशाएं भी डूब गईं। पचास हज़ार डालर की पूंजी उसके बनाने में खर्च हुई और निराशा हाथ लगी। अपने पिता के साथ हुई दो दुर्घटनाओं में ज़बर्दस्त हानि देखने के बाद एरिक्सन की इस हानि ने अल्फ्रेड को बेहद दु:खी और भावुक बना दिया। उन्होंने उसी समय दृढ़ निश्चय कर लिया कि जीवन में कभी लक्ष्मी की कृपा हुई तो वे एक ऐसी धन-राशि अवश्य पृथक् रखेंगे जिससे कि वैज्ञानिकों को उनके अन्वेषण में सहायता मिले और अकस्मात् हानि से उन्हें अर्थ-संकट का सामना न करना पड़े।

इस घटना के बाद अल्फ्रेड स्वदेश लौट आए और अपने पिता द्वारा किए जा रहे नाइट्रोग्लैसरीन के परीक्षणों में ही सहायता करने लगे। वे सदा ऐसे मिश्रण की खोज में रहते जो कम भयानक और अधिक शक्तिशाली हो।

सन् 1867 में ऐसा अवसर भी उपस्थित हो गया। एक दिन वैगन में से नाइट्रोग्लैसरीन से भरे हुए टिन उतारे जा रहे थे। तभी अल्फ्रेड की निगाह एक ऐसे टिन पर पड़ी जिससे झरकर नाइट्रोग्लैसरीन उस बालू पर गिर रही थी जो उसके चारों ओर रखी हुई थी। बालू में मिलकर नाइट्रोग्लैसरीन ठोस पदार्थ में परिवर्तित हो रही थी। भयानक विस्फोटों के इतिहास में यह एक अनोखी घटना थी जिसने 'डायनामाइट' को जन्म दिया। डायनामाइट भयानक विस्फोटक होने पर भी अपने साथ बेखटके ले जाया जा सकता था। अल्फ्रेड ऐसी ही किसी वस्तु की खोज में थे—भयानक विस्फोटक और शक्तिशाली, पर कम खतरनाक। उनकी चाह पूरी हो गई।

इस आविष्कार को पेटेण्ट कराने के बाद अल्फ्रेड नोबल ने कारखाने खोलने के लिए कई देशों की सरकारों के पास प्रार्थना-पत्र भेजे।

फ्रांस के बैंकों और बड़े व्यापारियों से ऋण माँगा। पर संसार को उड़ा देने वाले विस्फोटकों के विकास के लिए सभी ने सहायता करने से इन्कार कर दिया। केवल फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय को उनकी योजना पसन्द आई और उन्होंने काफी धन देकर फ्रांस में अल्फ्रेड के काम के लिए कई फैक्टरियां खुलवा दीं। फ्रांस में यह कार्य फैलाने के बाद अल्फ्रेड अमेरिका गए। उनके विस्फोटकों की ख्याति वहां उनके पहुंचने के पूर्व ही पहुंच चुकी थी। न्यूयार्क के होटल-मालिक ने जेब में बमों के नमूने लिए घूमने वाले इस व्यक्ति को होटल से निकाल दिया। न्यूयार्क से अल्फ्रेड कैलीफोर्निया गए और अपने एक मित्र की सहायता से वहां फैक्टरी खोली। फिर तो उनका काम ऐसा जमा कि पांच वर्ष की अवधि में यूरोप के सभी देशों में उनकी फैक्टरियां खुल गई। डायनामाइट चूर्ण से अल्फ्रेड ने लाखों कमाए।

फिर एक दिन एक और घटना घटी। पेरिस की एक फैक्टरी में काम करते समय अल्फ्रेड की एक उंगली कट गई और उससे खून बहने लगा। अलकोहल और ईथर के मिश्रण में गन-काटन को भिगोकर ज्यों ही उन्होंने ज़ख्म पर बांधा, एक विचार उनके मस्तिष्क में कौंध गया। गन-काटन एक भयानक वस्तु है। इसे यदि नाइट्रोग्लैसरीन में हल कर लिया जाए, तो दुगनी शक्ति का विस्फोटक तैयार हो सकता है। परीक्षण किया गया और 'ब्लास्टिंग जेलाटीन' नामक एक भयानक विस्फोटक तैयार हो गया। इस प्रकार नोबल ने संसार को पहली बार वह वस्तु दी जिससे वर्तमान युद्ध इतना विनाशकारी हो गया है। इसके दस वर्ष बाद उन्होंने छोटे अस्त्रों के लिए बिना धुएं के बारूद का आविष्कार किया। सेन रोमियो की अपनी फैक्टरी में काम करते हुए उन्होंने पेट्रोलियम और कृत्रिम गटापारचा की कई वस्तुएं बनाकर उन्हें पेटेण्ट करवाया।

यह सारा कार्य उनकी अस्वस्थता में ही चल रहा था। उनके सिर में सदा पीड़ा रहा करती थी और वे सिर पर पट्टी बांधे कार्य करते रहते थे। पीड़ा का वेग बढ़ने पर वहीं लेट जाते, वेग कम होते ही काम में फिर उसी तरह जुट जाते। फैक्टरियों के जहरीले धुएं ने स्वास्थ्य पर और बुरा प्रभाव डाला। सर्दी-भर खांसी से पीड़ित रहते,

पर कभी भी काम का नागा न करते। मोटे-मोटे ऊनी लबादे ओढ़े कार में बैठे प्रतिदिन प्रयोगशाला की ओर जाते दिखाई दे जाते। कभी-कभी सिरदर्द से घंटों छटपटाते रहते लेकिन काम फिर भी चलता रहता। सफलता के लिए इतना मूल्य शायद ही किसीने चुकाया हो। विद्वान और वैज्ञानिक उन्हें उनके बहुमूल्य आविष्कारों के कारण सम्मान की दृष्टि से देखते थे; साधारण लोग भयानक विस्फोटकों के आविष्कारक के रूप में उनसे घृणा करते थे। लेकिन मां के अलावा ऐसा कोई न था जो उनकी मानसिक वेदना को समझ पाता या उनसे आत्मीयता बढ़ा पाता। यों प्रथम प्रेमिका के बाद अल्फ्रेड के जीवन में दो सुन्दर स्त्रियां और भी आईं पर उन्हें वे अपना नहीं बना सके और उनकी मानसिक वेदना व एकाकीपन की पीड़ा दिनोंदिन गहराती चली गई। दूसरी स्त्री से उन्हें निराशा हुई थी। बाद में वह उन्हें धोखा भी दे गई। तीसरी बर्था वान सट्नर की एक अलग कहानी है जो वान सट्नर की जीवनी में ही पढ़िए।

स्वभाव से अल्फ्रेड नोबल बहुत उदार, भावुक और दयालु थे। ज़रूरतमंदों की हर तरह सहायता करते थे। पर जो लोग अपने स्वार्थ-वश या उनके धन के कारण ही उनसे सम्पर्क बढ़ाते थे, उनसे चिढ़ते भी थे। साधन-सम्पन्न होने पर भी वह न जीवन में सुखी थे, न सन्तुष्ट और न ही कभी स्वयं को महत्त्व देते थे। सन् 1870 के आसपास, जब वे यूरोप के धनी व्यक्तियों में गिने जाने लगे थे और उनका नाम चमकने लगा था, उनसे किसी पत्रकार ने उनके जीवन के बारे में कुछ प्रश्न किए। उनका उत्तर था :

विशेष गुण—अपने नाखून साफ रखना और कभी किसीपर भार न होना।

विशेष अवगुण—उसका अपना कोई परिवार नहीं है। स्वभाव से चिड़चिड़ा है और हाजमा खराब है। धन-दौलत की पूजा भी नहीं करता।

एकमात्र इच्छा—ज़िन्दा ही न दफना दिया जाए।

जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं—कोई भी नहीं।

कितने मार्मिक उत्तर !

एकान्तप्रिय और स्वप्नद्रष्टा दार्शनिक अल्फ्रेड ने अपने सम्मान पर बोलते हुए एक बार कहा, "मेरे सम्मानित किए जाने का न कोई विशेष आधार है, न विस्फोटक आधार। अपने स्वीडिश नार्थ स्टार (सम्मान) के लिए मैं अपने रसोइये का ऋणी हूं जिसकी कला मेरे रोगी उदर को भी माफिक आई है। मेरा 'फ्रेंच आर्डर' मुझे इसलिए मिला था कि मेरा कैबिनेट के एक सदस्य से घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'ब्राज़ीलियन आर्डर आफ द रोज़' मिलने का कारण मेरा परिचय सम्राट डान पेड्रो से हो जाने का इत्तिफाक माना जा सकता है। 'आर्डर आफ बेलिवार' मुझे इसलिए मिला होगा कि मैक्स फिलिप ने 'निनिशे' देखकर निश्चय किया होगा कि नाटक में बांटी गई उपाधियों और सम्मानों की तरह वह भी लोगों को सम्मान और उपाधियां बांट सकता है।"

स्वयं को महत्त्वहीन सिद्ध करने और अपना उपहास करने का इतना बेलाग प्रयत्न अन्यत्र नहीं देखा गया। इसके पीछे सत्य और स्पष्टवादिता से अधिक जीवन में प्राप्त कटु अनुभवों का मर्म ही था।

एकाकी नोबल कभी एक जगह पर घर बसाकर नहीं रह सके। कभी स्वीडन, कभी रूस, कभी फ्रांस, कभी जर्मनी, तो कभी इटली में। अधिकांश जीवन रेल, जहाज़ और होटलों में कटा और अधिकांश समय प्रयोगशालाओं में। वास्तव में उनका निवास-स्थान प्रयोगशालाएं ही थीं। जीवन के अन्तिम दिनों में वे इटली में थे। वहीं सैन रेमो में 10 दिसम्बर, 1896 को तिरेसठ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

जीवन के अंतिम प्रहर में अपनी अपार सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए अल्फ्रेड चिन्तित हो उठे थे। उत्तराधिकारियों के लिए सम्पत्ति छोड़ जाने का अभिप्राय, उनके विचार में, उसे अयोग्य हाथों में सौंपना था। अपने पूर्व संकल्प के अनुसार वे उसे ऐसे काम में लगाना चाहते थे जिससे साहित्य, विज्ञान और विश्व-शान्ति में सहायता मिले। इसीलिए 1890 में उन्होंने 'नोबल प्राइज़' के लिए अपनी वसीयत लिखी।

विस्फोटकों का आविष्कार करनेवाले व्यक्ति के मन में मानव-हित और विश्व-शान्ति के विचार उठना ऊपरी दृष्टि से एक विरोधाभास लग सकता है पर उनके पूरे जीवन, कार्यों और विचारों का अध्ययन करने पर ऐसा नहीं लगता। मनुष्य मृत्यु के कारण ही जीवन को बहुमूल्य समझने लगता है। उनके पिता इमानुएल नोबल विनाशक विस्फोटकों का आविष्कार करते-करते चिकित्सा-यंत्रों और आहतों-रोगियों के लिए आरामदेह रबड़-कुशनों का आविष्कार कर गए थे। 1890 के आसपास उनकी परिचिता बर्था वान सट्नर का 'हथियार डाल दो' उपन्यास जब प्रकाशित हुआ तो अल्फ्रेड नोबल ने उसकी प्रशंसा करते हुए वान सट्नर को लिखा, "मैं चाहता हूं, किसी ऐसे मसाले या यंत्र का आविष्कार करूं कि जिसके द्वारा आमने-सामने युद्धार्थ खड़ी सेनाएं एक सेकंड में एक-दूसरी का सर्वनाश कर सकें। तभी सभ्य कहाने वाली जातियां युद्ध छोड़ेंगी और सही मायने में सभ्य जातियों का जन्म होगा।"

कुछ दिन बाद पेरिस से वान सट्नर को पत्र लिखते हुए उन्होंने पुनः लिखा था, "मैं अपनी सम्पत्ति का एक भाग एक पुरस्कार के लिए सुरक्षित रखना चाहता हूं। वह पुरस्कार हर पांचवें वर्ष—तीस वर्षों में कुल छः बार—दिया जाए। तीस वर्षों के लम्बे समय में भी राष्ट्र अपना युद्ध-समर्थक रवैया न बदल सके तो वे बर्बरता की सीमा पर पहुंच जाएंगे। उसके बाद पुरस्कार का कोई उपयोग न होगा।"

उनका यह कथन भी असत्य नहीं है कि जिन वस्तुओं को मृत्यु और विनाश के लिए माना जाता है, वे वास्तव में मानवता के लिए लाभकर हैं। उनका दुरुपयोग न किया जाए तो मानव का उनसे कल्याण ही होगा। आज परमाणु शक्ति पर यही बात लागू होती है। उनके 'डायनामाइट' का उदाहरण ही लें। प्राचीन रोम-निवासियों को पहाड़ काटकर तीन मील लम्बी सड़क बनाने में 11 वर्ष का समय और तीस हज़ार व्यक्तियों की ज़रूरत पड़ी थी। आज 'डायनामाइट' की सहायता से यह कार्य कितनी आसानी से किया जा रहा है और सड़क-मार्गों ने मानव जाति को कितना लाभ पहुंचाया है, यह सभी जानते हैं।

अल्फ्रेड नोबल के नोबल पुरस्कार की वसीयत इस प्रकार है : "मेरे प्रत्येक भतीजे को पांच-पांच हज़ार पौंड देकर जो सम्पत्ति बचे उसे बेचकर धन एकत्र कर लिया जाए। इस धन को सुरक्षित वन्धक के रूप में रख दिया जाए। इस प्रकार प्राप्त व्याज से प्रति वर्ष ऐसे व्यक्तियों को पुरस्कार दिया जाए जिनका गत वर्ष का कार्य मानवता के लिए मौलिक रूप में सबसे अधिक लाभदायक समझा जाए। व्याज रूप में प्राप्त होने वाले उक्त धन को 5 समान भागों में विभक्त किया जाए। एक भाग उस व्यक्ति के लिए जो 'भौतिकविज्ञान' में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खोज करे, दूसरा भाग उस व्यक्ति के लिए जो 'रसायन-विज्ञान' में अत्यन्त उपयोगी खोज करे, तीसरा भाग 'चिकित्साशास्त्र' में नई खोज करनेवाले व्यक्ति के लिए, चौथा भाग 'साहित्य-क्षेत्र' में किसी आदर्श का नेतृत्व करनेवाली सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए और पांचवा भाग उस महान् पुरुष के लिए जो राष्ट्रों में भ्रातृत्व का प्रचार करनेवालों में तथा वर्तमान सैनिक बल का अन्त करके विश्व में शांति की स्थापना करने के प्रयत्न करनेवालों में सबसे बढ़कर माना जाए। पुरस्कार देते समय जाति या देश का विचार न किया जाए। जिसकी कृति अपने क्षेत्र में पुरस्कार योग्य प्रमाणित हो उसे ही पुरस्कार दे दिया जाए—वह किसी जाति का हो या किसी देश का निवासी हो।"

पुरस्कार देने योग्य रचनाओं पर विचार करने का कार्य उन्होंने कुछ प्रामाणिक संस्थाओं पर डालते हुए लिखा है :

"भौतिकविज्ञान और रसायनशास्त्र पर पुरस्कार प्रदान करने का कार्य स्टाकहोम की 'स्वीडिश ऐकेडेमी आफ साइंस' के जिम्मे रहेगा ; शरीरविज्ञान और औषधविज्ञान पर 'कैरोलिन मेडिकल इंस्टीट्यूट' विचार करके देगी। साहित्य पर स्वीडिश ऐकेडेमी पुरस्कार देगी और शान्ति पर पुरस्कार देने के लिए एक कमेटी बनाई जाएगी, जिसमें 5 सदस्य रहेंगे। इन सदस्यों का निर्वाचन 'नार्वेजियन स्टार्थिग' द्वारा होगा।"

नोबल पुरस्कार का मसविदा लिखते समय नोबल ने किसी वकील की सम्मति नहीं ली थी। अत: उसमें अनेक प्रकार की कानूनी त्रुटियां

रह गई थीं। स्वीडन के सम्राट् तथा नोबल वंश के एक उत्तराधिकारी ने मिलकर बाद में इन बाधाओं पर विचार किया और कुछ ऐसे उपनियम बना दिए जिनमें नोबल का अभिप्राय भी स्पष्ट हो गया और पुरस्कार के मार्ग के बीच की कानूनी रुकावटें भी दूर हो गई। एक उपनियम द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि किसी वर्ष एक से अधिक विद्वानों की रचनाएं पुरस्कार की कोटि में आ जाएंगी तो पुरस्कार का धन उनमें बराबर-बराबर बांट दिया जाएगा। इसी प्रकार कमेटी ने एक उपनियम द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया कि जिस वर्ष कोई रचना पुरस्कार के उपयुक्त नहीं समझी जाएगी, उस वर्ष पुरस्कार रोक लिया जाएगा और उस धन को या तो मूल कोष में सम्मिलित कर दिया जाएगा या उससे उस विभाग विशेष की उन्नति के लिए कोई दूसरा कोष खोल दिया जाएगा।

नोबल ने पुरस्कार के लिए लगभग 20 लाख पौंड की स्थायी सम्पत्ति छोड़ी है, जिसके व्याज की वार्षिक आय, टैक्स की रकम निकालकर, 6 लाख रुपये से ऊपर है। यह आय अनेक कारणों से घटती-बढ़ती रहती है। फिर भी यह निश्चित है कि प्रत्येक पुरस्कार की रकम 90 हज़ार रुपये से कम और सवा लाख रुपये से अधिक कभी नहीं होती। इसकी व्यवस्था करने के लिए एक प्रबन्धकारिणी समिति बना दी गई है जो 'नोबल फाउण्डेशन' कहलाती है। इसमें पांच सदस्य रहते हैं। सभापति का निर्वाचन स्वीडन के सम्राट् करते हैं।

इस संस्था का एक अपना विशाल पुस्तकालय है जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में की जाती है। इस पुस्तकालय में संसार की सभी भाषाओं की प्रमुख पुस्तकों के अनुवाद या मूल रहते हैं। इस पुस्तकालय का प्रधानाध्यक्ष भी पुरस्कार कमेटी का अनिवार्य सदस्य होता है।

पुरस्कारों के नियमोपनियम प्रति पांचवें वर्ष प्रकाशित किए जाते हैं जिससे साधारण लोगों को उनके सम्बन्ध की जानकारी बनी रहे। जिस व्यक्ति को पुरस्कार दिया जाता है उससे यह आशा भी की जाती है कि वह ऐकेडेमी में स्वयं उपस्थित होकर विद्वानों के समक्ष

पुरस्कृत विषय के सम्बन्ध में एक मौलिक भाषण दे। यद्यपि यह अनिवार्य नियम नहीं है।

पुरस्कारार्थ विचार करने के लिए कोई विद्वान स्वयं अपनी रचना सीधी नहीं भेज सकता। किसी अन्य प्रामाणिक विद्वान को उक्त विद्वान की रचना की सिफारिश करनी पड़ती है और पुरस्कार देने के लिए प्रस्ताव के रूप में उसे कमेटी के सामने उपस्थित करना होता है, तब कमेटी उसपर विचार करती है। प्रामाणिक विद्वानों में स्वीडिश ऐकेडेमी या अन्य समान ऐकेडेमियों के प्रतिनिधियों तथा महान् वैज्ञानिक या साहित्यिक संस्थाओं के प्रमुखों की भी गणना है। इस प्रकार के प्रस्ताव पुरस्कार समिति के पास प्रतिवर्ष फरवरी की पहली तारीख तक पहुंच जाने चाहिए, अन्यथा समिति उनपर विचार करने को बाध्य न होगी।

पुरस्कार की विधिवत् घोषणा प्रतिवर्ष दस दिसम्बर को होती है, जो अल्फ्रेड नोबल की निधन-तिथि है, यद्यपि विजेताओं के नाम अक्टूबर-नवम्बर में पत्रों में प्रकाशित हो जाते हैं। एक बार घोषणा हो जाने पर फिर नियमानुसार उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, चाहे उसका कितना ही प्रतिवाद पत्रों द्वारा क्यों न किया जाए। अपने नियमों में नोबल ने यह स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने यह भी लिख दिया है कि पुरस्कार समिति के आभ्यन्तरिक मतभेदों का प्रकाशन बाह्य जनता पर किसी प्रकार न हो। न समिति की रिपोर्टों में ही उनका किसी प्रकार का उल्लेख होगा। नियमानुसार घोषणा हो जाने के कुछ ही दिन बाद किसी विश्वस्त संस्था या उच्चाधिकारी की मार्फत पुरस्कार की रकम निर्दिष्ट व्यक्ति के पास भेज दी जाती है। साथ ही एक स्वर्णपदक और एक सम्मान-पत्र भी भेजा जाता है। स्वर्णपदक में एक ओर अल्फ्रेड नोबल की मूर्ति बनी होती है और दूसरी ओर पुरस्कृत व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ प्रशंसात्मक शब्द।

सन् 1901 से नोबल पुरस्कार का यह वितरण आरम्भ हुआ है। और अभी तक कुल तीन सौ दो व्यक्तियों को मिल चुका है, जिनमें महिलाओं की संख्या पन्द्रह ही है।

बर्था वान सट्नर

(1843-1914)

1905 में विश्व-शांति के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त करने-वाली विश्व की पहली महिला थीं, बर्था वान सट्नर, जो एक आस्ट्रियन उपन्यासकार थीं, पर उपन्यासकार से अधिक महान शांतिवादी के रूप में विख्यात हुईं। कहते हैं, नाइट्रोग्लैसरीन और डाइनामाइट जैसे विस्फोटकों का आविष्कार करनेवाले वैज्ञानिक अल्फ्रेड नोबल को शान्ति के लिए पुरस्कार निर्धारित करने की प्रेरणा देनेवाली बर्था वान सट्नर ही थीं।

बर्था वान सट्नर अल्फ्रेड नोबल के जीवन में बहुत थोड़े समय के लिए आई थीं, पर जीवन-भर के लिए अपना प्रभाव उनपर छोड़ गई थीं। उनका पत्र-व्यवहार बराबर चलता रहा। नोबल उनके शान्ति-समर्थक कार्यों का बराबर ध्यान से अध्ययन करते रहे। फिर जब वान सट्नर का प्रख्यात उपन्यास 'ले डाउन आर्म्स' (हथियार डाल दो) प्रकाशित हुआ तो उसने अल्फ्रेड नोबल को भी बेहद प्रभा-वित किया। उपन्यास पसन्द आने पर उसकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने वान सट्नर को लिखा, "मैं चाहता हूं, किसी ऐसे विस्फोटक मसाले का आविष्कार करूं या ऐसी कोई मशीन बनाऊं जिससे आमने-सामने युद्धार्थ खड़ी सेनाएं एक सेकंड में एक-दूसरी का सर्वनाश कर सकें। तभी सभ्य कहाने वाली जातियों की आंखें खुलेंगी और वे युद्ध करना छोड़ सकेंगी।" इसके कुछ दिन बाद उन्होंने फिर वान सट्नर को लिखा, "मैं अपनी सम्पत्ति का एक भाग एक पुरस्कार के लिए रख देना चाहता हूं। यह पुरस्कार प्रति पांचवें वर्ष उस व्यक्ति को दिया जाए जो संसार से युद्ध का समूल विनाश करने के पक्ष में ज़ोरदार आवाज़ उठाए या इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम करे। यह पुरस्कार तीस वर्षों में कुल छः बार ही दिया जाए। यदि

इतनी लम्बी अवधि के बाद भी राष्ट्र अपना रवैया न बदलें तो वे बर्बरता की चरम सीमा पर पहुंच जाएंगे। तब पुरस्कार को जारी रखने का कोई अर्थ न रह जाएगा।"

इन पत्रों से शांति पुरस्कार के लिए बर्था बान सट्नर की प्रेरणा की पुष्टि होती है।

बर्था का जन्म 9 जून, 1843 को प्राहा में एक सामन्ती परिवार में हुआ। वे काउण्ट फ्रान्ज़ वान किन्स्की नामक आस्ट्रियन फील्डमार्शल की पुत्री थीं। किन्तु बाद में निर्धनता के कारण उन्होंने वियना के बैरन परिवार में 'गवर्नेस' के रूप में काम करना शुरू कर दिया था। बैरन वान सट्नर की चार लड़कियों की देखभाल का काम उनके ज़िम्मे था। यहीं बैरन वान सट्नर के एक पुत्र से उनका प्रेम-सम्बन्ध भी चलने लगा। यह लड़का आर्थर वान सट्नर उनसे सात वर्ष छोटा था। उम्र के इस अन्तर तथा बर्था की आर्थिक स्थिति के कारण आर्थर के माता-पिता इस विवाह के प्रबल विरोधी थे। आर्थर के झुकाव को देखकर उन्होंने बर्था को नौकरी से अलग कर देने का निश्चय किया ताकि अलग रहकर वे दोनों धीरे-धीरे एक-दूसरे को भूल सकें। अब बर्था के सामने फिर रोज़ी की समस्या थी।

अल्फ्रेड नोबल उस समय पेरिस में रह रहे थे। अठारह वर्ष की तरुणावस्था में उन्हें एक लड़की से प्रेम हुआ था जो थोड़े समय बाद चल बसी थी और अल्फ्रेड नोबल को गहरा आघात दे गई थी। एक लम्बे समय तक नोबल इस व्यथा को अन्तर्मन में छुपाए अपने विज्ञान के प्रयोगों में खोए, डूबे रहे और अपने आविष्कारों से अपार सम्पत्ति अर्जित करते रहे। इस समय उनके पास कई बंगले थे। पेरिस के उस आलीशान बंगले में घुड़साल, प्रयोगशाला, अध्ययन-कक्ष के अलावा कई कमरे और भी थे। पर कोई साथी न था जो इस ऐश्वर्य का उपभोग कर सके। एक लम्बे अन्तराल के बाद जब उन्हें यह ध्यान आया तो उन्होंने समाचारपत्र में एक विज्ञापन निकलवाया, "एक बहुत धनी, शिष्ट, प्रौढ़ सज्जन के लिए कुछ अधिक अवस्था की एक ऐसी स्त्री की आवश्यकता है जो कई भाषाएं जानती हो, उनकी सेक्रेटरी का काम कर सके तथा उनके घर की देखभाल भी कर



बर्था वान सट्नर
1905 में विश्वशान्ति पर नोबल पुरस्कार

सके।"

प्रेम में निराश और नौकरी से बरखास्त वर्था किन्स्की ने प्रार्थना-पत्र भेज दिया। उस समय वर्था की आयु तैंतीस वर्ष की थी। इस प्रार्थना-पत्र के बाद वर्था किन्स्की और अल्फ्रेड नोवल में कई पत्रों का आदान-प्रदान हुआ। फिर उन्हें पेरिस से अल्फ्रेड नोवल का बुलावा आ गया। निश्चित तिथि को वर्था पेरिस पहुंची तो अल्फ्रेड को स्टेशन पर प्रतीक्षा करते हुए पाया। प्रथम दृष्टि में ही दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया। अल्फ्रेड नोबल की सेक्रेटरी का काम वर्था ने संभाल लिया। नोवल ने भी उन्हें हर तरह से सुखी वनाने का प्रयत्न किया। एक सप्ताह बीत जाने पर नोवल ने जव स्पष्ट शब्दों में पूछा कि क्या वे किसीसे प्रेम करती हैं तो वर्था रो पड़ीं, और उन्होंने बैरन वान सट्नर परिवार तथा उनके लड़के आर्थर से अपने प्रेम की सारी कहानी उन्हें सुना दी। सुनकर सल्फ्रेड दुखी हुए और मौन हो गए।

अभी वर्था किन्स्की को पेरिस आए दस-बारह दिन ही बीते थे कि उन्हें आर्थर का तार मिला, "तुम्हारे बिना जीना असम्भव है। तुरन्त चली आओ।" अल्फ्रेड नोबल उस समय कार्यवश स्वीडन गए हुए थे। उनके पीछे ही वर्था वियना चली गई। एक महीने बाद आर्थर वान सट्नर और वर्था किन्स्की विवाह-सूत्र में बंध गए। तभी अल्फ्रेड नोवल को यह समाचार मिला, जिससे उन्हें काफी दुख हुआ। ग्रीष्म ऋतु में अल्फ्रेड वियना गए, इस विचार से कि बर्था किन्स्की से उनकी भेंट हो सकेगी, पर इसमें भी उन्हें निराश होना पड़ा क्योंकि विवाह के वाद दोनों अपने कुछ मित्रों के पास काकेशस चले गए थे।

यह घटना 1876 की है। इसके बाद ग्यारह वर्ष तक अल्फ्रेड की भेंट वान सट्नर दम्पती से नहीं हो सकी। जब वे लोग 1887 में पेरिस आए तभी वर्था अल्फ्रेड से मिल सकीं। इसके बाद कभी-कभी भेंट होती रहती थी। वर्था अपना मार्ग चुन चुकी थीं। उन्होंने अपना काफी समय लेखन और सामाजिक कार्यों में लगाना शुरू कर दिया था। आल्फ्रेड का मार्ग अलग था। सम्पर्क भी वहुत कम हो पाता था।

पर कभी-कभी पत्र-व्यवहार द्वारा उनकी मित्रता निभती रही। कभी भेंट होने पर अल्फ्रेड के युद्ध-सम्बन्धी विस्फोटकों के आविष्कार और उनके उत्पादन तथा बर्था के लेखन व शांति-प्रयत्नों के परस्पर-विरोधी विषयों पर चर्चाएं भी होतीं। बर्था युद्ध पर इन विस्फोटकों के विनाशकारी प्रभाव से डरती थीं इसलिए उनका विरोध करती थीं। अल्फ्रेड नोबल किसी अत्यन्त भयंकर विस्फोटक के आविष्कार के बाद ही युद्ध के खात्मे की सम्भावना देखते थे (आज विश्वयुद्धों की रोक-थाम में अणुशक्ति के आविष्कार का प्रमुख हाथ देखकर उनके चिन्तन की दिशा का आभास मिलता है)। दोनों की राहें भिन्न थीं पर उद्देश्य एक था : युद्ध का खात्मा और विश्व-शांति। अतः मतभेद के बावजूद दोनों जीवनपर्यन्त मित्र बने रहे व एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे।

पेरिस में जब अल्फ्रेड से मुलाकात हुई उस समय तक बर्था की 'इन्वेंटरी आफ ए सोल' पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी और वे 'द मशीन एज' नामक दूसरी पुस्तक लिख रही थीं। बाद में 1889 में जब उनका 'ले डाउन आर्म्स' उपन्यास प्रकाशित हुआ तो इसकी चारों ओर धूम मच गई। युद्ध-विरोधी साहित्य में इस उपन्यास का प्रमुख स्थान है, और 'अंकल टाम्स काटेज' के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के लोकप्रिय उपन्यासों में दूसरा। इसी उपन्यास ने अल्फ्रेड नोबल को प्रभावित कर उन्हें शांति-पुरस्कार के लिए प्रेरित किया। विश्व-शान्ति के लिए किए गए बर्था के सभी प्रयत्नों में इस उपन्यास के लेखन का अपना विशिष्ट महत्त्व है, जिसकी कहानी में संसार में शांति-स्थापना की आवश्यकता पर कलात्मक ढंग से बल दिया गया है। उन्हें 'नोबल शान्ति-पुरस्कार' इसीपर मिला, यद्यपि 1891 में आस्ट्रियन शान्ति-समर्थकों के संगठन की स्थापना और उसके माध्यम से विश्व-शांति के सक्रिय प्रयत्नों का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। शांति-समर्थक एक पत्रिका का सम्पादन भी वे 1892-99 के बीच करती रही थीं।

बेरोनेस बर्था वान सट्नर ने अपने संस्मरण भी लिखे हैं, जिनसे अल्फ्रेड नोबल के व्यक्तित्व, उनके स्वभाव व चरित्र तथा नोबल

पुरस्कारों—विशेष रूप से नोबल शांति-पुरस्कारों—के उद्देश्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

21 जून, 1914 को वियना में उनकी मृत्यु हो गई। एक महान शांतिवादी उपन्यासकार और विश्व-शांति के लिए नोबल पुरस्कार पाने वाली प्रथम महिला के रूप में उनका नाम अमर है। इस रूप में भी कि उन्होंने एक महान व्यक्ति को महान उद्देश्य के लिए प्रेरित किया।

जेन एडम्स

(1860-1935)

सन् 1931 का विश्व-शान्ति के लिए नोबल पुरस्कार अमेरिका की महान् समाज-सेविका और शान्तिप्रेमी नारी जेन एडम्स को प्रदान किया गया। 1905 में वान सट्नर को प्रथम बार यह पुरस्कार मिला था। इतने लम्बे समय के व्यवधान के बाद जेन एडम्स दूसरी महिला थीं जिन्हें इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

शिकागो के विख्यात 'हल हाउस' की संस्थापिका जेन एडम्स का नाम प्रवुद्ध पाठकों के लिए अपरिचित नहीं है। संत इमर्सन और क्राइस्ट की अनन्य भक्त जेन एडम्स ने इमर्सन के काव्य-सौंदर्य और क्राइस्ट के सेवा-संतोष दोनों को आत्मसात् कर अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया था और उसीसे अपने जीवन को दिशा दी थी।

उनका 'हल हाउस' सेवा का प्रतीक था तो 'पीस पार्टी' मानव-जीवन के सौन्दर्य को अनैतिकता और हिंसा की विकृतियों से बचाने का सटीक प्रयत्न। 'पीस पार्टी' की संस्थापिका जेन एडम्स के सामने 1914-18 का प्रथम महायुद्ध एक चुनौती बनकर आया था। इस चुनौती को स्वीकार न करने का अर्थ था, अपने सिद्धान्तों की हत्या और मनुष्य की मनुष्यता या अच्छाइयों के प्रति अविश्वास। दूसरी ओर युद्ध के दौरान युद्ध का विरोध भी कोई आसान काम न था। पर अंतरात्मा की आवाज़ प्रबल हो तो कोई बाधा नहीं रहती। जेन एडम्स ने घूम-घूमकर एक-एक दिन में कई-कई भाषण दिये। लोगों को हिंसा की हानियां समझाईं और युद्ध का डटकर विरोध करने के लिए प्रेरित किया। उनके शान्ति-संदेश को संदेह की निगाह से देखा गया और कई वर्ष के लिए अमेरिका में ही नज़रबन्द करके रखा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी 'पीस पार्टी' छिन्न-भिन्न हो गई। युद्ध-समाप्ति और अपनी रिहाई के बाद उन्होंने इन बिखरे

सूत्रों को फिर से जुटाया और अमेरिकन स्त्रियों की 'पीस पार्टी' को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला लीग' में सम्मिलित कर दिया। जेन एडम्स इस अन्तर्राष्ट्रीय महिला लीग की अध्यक्षा चुनी गईं और लीग के माध्यम से विश्व-शान्ति-सम्बन्धी गतिविधियां और तेज़ कर दी गईं। इन्हीं महती सेवाओं और शान्ति-प्रयत्नों के लिए जेन एडम्स को 1931 का नोवल पुरस्कार निकोलस मरे बटलर के साथ आधा विभाजित करके प्रदान किया गया।

नोवल पुरस्कार यद्यपि उन्हें शान्ति प्रयत्नों के लिए मिला, पर सेवा-क्षेत्र में उनकी देन इससे भी महान है। देखा जाए तो शान्ति की बात भी मानवता की सेवा के साथ ही जुड़ी है, इसलिए उनके सम्पूर्ण कार्य को मानवीय सेवा-संवेदना के रूप में ही आंकना ठीक होगा। हालस्टेड स्ट्रीट स्थित उनका 'हल हाउस' एक ऐसा आश्रय-स्थल था, जहां बिना किसी भेदभाव के हर कोई आकर अपना शारीरिक, मानसिक, आर्थिक संताप मिटा सकता था। इस भवन के बाहर लिखा था, "यदि आप भूखे हैं तो यहां आएं, भोजन करें; यदि आप थके हैं तो यहां आएं, विश्राम करें!" जेन एडम्स के अनुसार, "भूख धन की या भोजन की ही नहीं होती, शान्ति, मैत्री और सद्भावना की भी होती है। गरीब अपनी सामान्य ज़रूरतों और सुख-सुविधाओं के भूखे हैं तो अमीर स्नेह, सद्भावना और अपनत्व के। 'हल हाउस' सभी के लिए है। इसका ध्येय है, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, काले-गोरे, देशी-विदेशी—सभीको सद्भावना के एक सूत्र में बांधना। अंग्रेज़, फ्रांसीसी, जर्मन, यहूदी, नीग्रो, आयरिश, इटैलियन, रूसी, स्कैंडिनेवियन आदि अनेक जातियां अमेरिका में आकर बसी हैं पर उनमें परस्पर सद्भावना का अभाव है इसीलिए जातीय पक्षपात और भ्रान्तियों को बढ़ावा मिला है। 'हल हाउस' इन सभीके मिल बैठने और स्वतंत्र आदान-प्रदान द्वारा यह भ्रान्तियां मिटाने के लिए खुला है।"

शुरू में लोगों ने 'हल हाउस' की सेवाओं को भी संदेह की दृष्टि से देखा, फिर धीरे-धीरे उसके उद्देश्य लोगों के सामने स्पष्ट होते गए। 'हल हाउस' में भूखों को भोजन कराया जाता। रोगियों को चिकित्सा-सहायता दी जाती। परिवार में सताई स्त्रियों को आश्रय दिया जाता,



जेन एडम्स
1931 में विश्वशान्ति पर नोबल पुरस्कार

फिर उनके घरेलू झगड़ों को सुलझाने में या उन्हें काम दिलाने में सहायता कर उन्हें पुनः स्थापित किया जाता। कारखानों में काम करने वाली माताओं के बच्चों के लिए 'शिशुगृह' और 'किंडर गार्टन' स्कूल की व्यवस्था थी। वृद्धों के लिए आमोद-प्रमोद-गृह और कला-प्रेमियों के लिए कला-केन्द्र भी थे। इस सबके साथ थी : 'गुड नेबर पालिसी', जिसके अन्तर्गत विचार-गोष्ठियां होतीं। पारिवारिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय मसलों के शान्तिपूर्ण समाधानों की खोज होती। जाति-विद्वेष और युद्ध-भावना के खिलाफ वातावरण तैयार किया जाता। 'सोशल एक्सटेंशन कमेटी' के माध्यम से सद्भावना, ऐक्य और भाईचारे का प्रचार होता। 'हल हाउस' के अनुकरण पर बाद में अन्य अनेकों राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-संस्थाओं का जन्म हुआ।

बाल-श्रमिक समस्या के समाधान में भी जेन एडम्स का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के कई छोटे-मोटे प्रयत्नों के बाद भी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक बाल-श्रम की समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई थी। सात-आठ साल के बच्चों को चौदह-चौदह घंटे काम पर लगाया जाता था और मज़दूरी उन्हें एक-तिहाई दी जाती थी। कहीं-कहीं तो चार-पांच साल के बच्चे भी दिन-भर जोतकर रखे जाते थे। जेन एडम्स से यह देखा नहीं गया। उन्होंने समस्या का गहराई से अध्ययन किया और यह ज़िम्मेदारी भी अपने सिर ले ली। इलिनोस में विभिन्न संस्थाओं को संगठित कर उन्होंने प्रस्ताव पास कराया कि सोलह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए सुबह सात बजे से पहले और शाम सात बजे के बाद काम पर जाने और रहने का निषेध किया जाए। बाद में यही कानून 'जेन एडम्स कानून' के नाम से जाना गया। बाल-श्रम की बुराइयों को खत्म करवाने के साथ उन्होंने व्यावसायिक केन्द्रों में बच्चों के लिए क्रीड़ा-गृहों की व्यवस्था भी कराई। उनके 'हल हाउस' में देश-विदेश के विभिन्न भागों से सैकड़ों बच्चे रोज़ आते थे। विभिन्न जातियों में सद्भावना और शान्ति-प्रसार का पाठ वे बच्चों के माध्यम से ही अगली पीढ़ी को पढ़ाना चाहती थीं।

विभिन्न देशों व जातियों के बच्चे एक-दूसरे की भाषा नहीं समझते थे, पर प्रेम की भाषा, जो वहां पढ़ाई जाती थी, उसे वे खूब समझते थे और समझकर खुश होते थे। काश ! जेन एडम्स के इन प्रयत्नों को उनके बाद वहां और हर जगह इसी तरह बढ़ाया जाता तो आज दुनिया का नक्शा कुछ और होता। उनकी पुस्तक 'दि स्पिरिट आफ यूथ' पर ध्यान दिया जाता तो आज की यह विश्वव्यापी युवा-समस्या इतना विकट रूप लेकर सामने न आती।

जेन एडम्स के पिता सीडरविल, इलिनोस के एक धनी मिल-मालिक और स्टेट सीनेटर थे। 1860 में जेन को जन्म देकर मां दो वर्ष बाद चल बसी थीं। पिता एक विचारशील और उदार व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व भी बड़ा सुन्दर था। जेन छोटे कद की, दुबली-पतली और पढ़ने में सामान्य लड़की थी। मां का अभाव, दूसरे और हीनभाववश, भावुक जेन पिता के पास जाते हुए शर्माती। मन ही मन भगवान से मनाती कि वह या तो उसे पिता की तरह योग्य बनाए या फिर हटा ले। एक बार एक सार्वजनिक स्थल पर पिता के सामने पड़ जाने पर उसने घबराकर उनसे पूछा, "क्या लोगों के सामने मुझे अपनी बेटी बताते आपको संकोच का अनुभव नहीं होता ?" पिता उसके दूर-दूर रहने का रहस्य समझ गए। उन्होंने जेन एडम्स की पीठ थपथपाई। उसे अपने प्यार का आश्वासन दिया और प्रेरणा दी कि अपने भीतर का हीनभाव निकालने के लिए वह महापुरुषों की जीवनियां पढ़े।

यह जेन के जीवन का पहला मोड़ था। उसने अनेक महापुरुषों की जीवनियां पढ़ डालीं। पर सबसे ज़्यादा प्रभावित हुई इमर्सन और क्राइस्ट से। 'न्यू टेस्टामेंट' की एक-एक लाइन ध्यान से पढ़ती और घंटों भाव-विभोर रहती। मन ही मन संकल्प करती, वह भी अपना जीवन ऐसे ही दुखियों और रोगियों की सेवा में लगाएगी। पर तब तक दु:खी या गरीब लोगों के बारे में उसकी परिकल्पना अपूर्ण थी। फिर एक बार अपनी इंग्लैण्ड-यात्रा के समय जब वह किराये की बस में बैठकर रात को लंदन की उन गलियों से गुज़र रही थी जहां के दृश्य की उसने कभी कल्पना भी न की थी, तो उसके जीवन का दूसरा मोड़

आरम्भ हुआ। जेन ने देखा, दुर्गन्धमय गली के एक मोड़ पर एक दुकान से गरीब स्त्री-पुरुष सड़ी-गली तरकारियां सस्ते दामों पर खरीद रहे थे। भीड़ अधिक होने से बस को रुक-रुककर चलना पड़ रहा था और जेन देख-देखकर घबरा रही थी। मैले-कुचैले अर्धनग्न कंकाल। गंदगी, गाली-गलौज और छीना-झपटी। कीड़ों से खाई हुई तरकारियों को दो-दो पेंस में खरीदकर वे उन्हें कच्ची ही चबाए जा रहे थे। सड़ी वस्तुएं और उन्हें सस्ते में प्राप्त करने की इतनी होड़ और प्राप्ति के बाद इतनी खुशी! जेन को एक धक्का-सा लगा। दुःख और गरीबी की परिभाषा उसकी समझ में आ गई। उस समय वह मेडिकल कालेज में पढ़ रही थी। अस्वस्थता के कारण डाक्टर ने उसे यूरोप घूमने की सलाह दी थी।

इसी भ्रमण के दौरान लंदन में यह घटना घटी और जेन के जीवन का ध्येय निश्चित हो गया।

शिकागो लौटकर जेन एडम्स ने पिता को अपना निश्चय सुनाया, "मैं विवाह नहीं करूंगी और समस्त जीवन दीन-दुखियों की सेवा में बिताऊंगी।" कार्य कठिन था पर न तो जेन के पास आत्मबल की कमी थी, न पिता के पास धन की। राह निश्चित हुई तो कदम भी दृढ़ता से बढ़ चले। आगे की लम्बी साधना की कहानी तो 'हल हाउस में चालीस वर्ष' वाली दो भागों की पुस्तक में संगृहीत है।

मानवता की सेवा में लगभग पचपन वर्ष तक निरन्तर संलग्न रहने के बाद सन् 1935 में उनकी मृत्यु हुई। मृत्यु से चार दिन पूर्व उनके पेट में अचानक भयंकर दर्द उठा था। डाक्टरों ने आपरेशन की सलाह दी। अस्पताल ले जाने के लिए जब एम्बुलेंस आई तो दर्द को दबाते हुए उन्होंने हंसकर कहा, "क्या आप दो-चार मिनट प्रतीक्षा नहीं कर सकते? मेरे उपन्यास के कुछ ही पृष्ठ शेष हैं। कहानी का अन्त लाए बिना मरना मुझे कैसे अच्छा लगेगा?" पर डाक्टरों ने उनकी बात अनसुनी कर दी। उन्हें विश्वास था कि वे उन्हें बचा लेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ।

जेन एडम्स के शव के साथ हज़ारों श्रद्धालुओं की भीड़ थी और हर देश, जाति, रंग का व्यक्ति उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा

था। मानवता और विश्व-शान्ति-मैत्री की शाश्वत भावना के साथ उनका नाम भी अमर है।

प्रमुख कृतियां

1. दि स्पिरिट आफ यूथ
2. न्यूअर आइडियल आफ पीस
3. डेमोक्रेसी एण्ड सोशल इथिक्स
4. दि लांग रोड आफ वीमेंस मेमोरी
5. ट्वैंटी इयर्स एट हल हाउस
6. सेकिंड ट्वैंटी इयर्स एट हल हाउस

एमिली ग्रीन बाल्च

(1867-1961)

'यह सम्मान मेरे लिए नहीं, मेरी संस्था के लिए है।'

यह कहते हुए सारी पुरस्कार-राशि 'वीमेंस इंटरनेशनल लीग फार पीस एण्ड फ्रीडम' को देने की घोषणा करनेवाली कुमारी एमिली ग्रीन बाल्च ने एक बार फिर समूचे विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

विश्व-शांति के लिए जीवन-भर अथक प्रयत्न करनेवाली एमिली बाल्च को शांति का नोबल पुरस्कार 1946 में वाई० एम० सी० ए० के लीडर जोन आरमांट के साथ आधा बांटकर दिया गया था।

'वीमेंस इंटरनेशनल लीग फार पीस एण्ड फ्रीडम' के साथ एमिली बाल्च का नाम इसके स्थापना-वर्ष से ही जुड़ा था। जेन एडम्स के साथ मिलकर वे इसकी स्थापना में भी भागीदार रहीं। जब तक जेन एडम्स ज़िंदा रहीं, उनकी अध्यक्षता-काल में एमिली बाल्च ही इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था की महामंत्री रहीं। फिर जेन एडम्स की मृत्यु के बाद 1936 से लेकर अपने अंतिम समय तक वे ही इसके अध्यक्ष-पद पर भी आसीन रहीं। यद्यपि उनका विश्वशांति के लिए किया गया कार्य मुख्यत: इस संस्था के कार्य से ही सम्बन्धित है पर उनके शांति-प्रयत्न व समाजसेवा-कार्य इसकी स्थापना से काफी पहले ही प्रारम्भ हो चुके थे।

एमिली ग्रीन बाल्च का जन्म 8 जनवरी, 1867 को जुमैका प्लेन, मास, अमेरिका में हुआ। पिता वकील थे, जोकि एक समय 'एन आल आउट फार पीस' के नाम से प्रसिद्ध एडवोकेट चार्ल्स समनर के सेक्रेटरी थे। एमिली में शांति की चाह के संस्कार सम्भवत: यहीं से पड़े।

एमिली ने प्रारम्भिक शिक्षा प्राइवेट स्कूलों में ली थी। फिर



एमिली ग्रीन बाल्च
1946 में विश्वशांति पर नोबल पुरस्कार

ब्राइन मान कालेज से स्नातक बनीं। कालेज में पढ़ते समय ही वे स्लम-सुधार कार्य में दिलचस्पी लेने लगी थीं। स्नातक बनने के बाद एक वर्ष तक उन्होंने प्रसिद्ध समाजशास्त्री फ्रेंकलिन एच० गिडिंग्स के निर्देशन में उनके पास प्राइवेट रूप से समाजशास्त्र का अध्ययन किया। फिर 1890 में ब्राइन मान कालेज की ओर से यूरोपियन फेलोशिप एवार्ड लेकर समाजशास्त्र में आगे शोध-अध्ययन के लिए पेरिस चली गईं। वहां एक वर्ष तक प्रोफेसर ई० लेवाजयुर के निर्देशन में अर्थशास्त्र तथा 'फ्रेंच पुअर रिलीफ सिस्टम' में शोधकार्य किया। 1893 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'पब्लिक असिस्टेंस आफ द पुअर इन फ्रांस' इसी अध्ययन पर आधारित है।

1891 में बोस्टन लौटकर मिस बाल्च 'चिल्ड्रन एड सोसाइटी' में सोशल वर्कर के रूप में कार्य करने लगीं। 1892 में विडा डी स्कडर के साथ मिलकर उन्होंने बोस्टन में 'डेनियस हाउस सेटिलमेंट' की स्थापना की। इसी समय श्रमिक समस्याओं में वे पूरी तरह रुचि लेने लगी थीं। 'वीमैन ट्रेड यूनियन लीग' की स्थापना उनके ही प्रयत्नों का परिणाम था। 'कंज़्यूमर्स लीग' की कमेटी की चेयर-मैन के रूप में उनकी नागरिक सेवाएं तथा अमेरिकी विधान में प्रथम न्यूनतम वेतन बोर्ड का प्रारूप तैयार करने में उनका वैधानिक योग-दान भी उल्लेखनीय है।

सामाजिक क्षेत्र में इतना कार्य कर लेने के बाद कुमारी एमिली बाल्च अध्यापन कैरियर की ओर झुकीं। हावर्ड यूनिवर्सिटी एनेक्स (अब रेड क्लिफ कालेज) में, यूनिवर्सिटी आफ शिकागो में तथा यूनि-वर्सिटी आफ बर्लिन में अध्यापन करने के बाद 1902 में उनकी नियुक्ति वेलेज़ली कालेज के अर्थशास्त्र विभाग में असिस्टेंट के रूप में हुई। एक वर्ष उन्हें इंस्ट्रक्टर रखा गया, फिर 1903 में एसोसिएट प्रोफेसर। 1913 से 1918 तक वे प्रोफेसर भी रहीं। फिर 1918 में अपनी युद्ध-विरोधी व शांति-समर्थक नीति के अनुसार प्रथम विश्वयुद्ध की पूरी अवधि-भर कालेज से लम्बी छुट्टी लेकर अनुपस्थित रहने के कारण उन्हें कालेज-सेवा से अलग कर दिया गया।

अपने अध्यापन-काल के सभी वर्षों में विश्व-शांति की दिशा में

उनका कार्य निरन्तर चलता रहा, जिसे 'वीमेंस इंटरनेशनल लीग फार पीस एण्ड फ्रीडम' संस्था की स्थापना के बाद तथा कालेज से अवकाश ग्रहण करने के बाद और गति प्रदान की गई। बोस्टन नगर के बच्चों के लिए स्थापित 'म्युनिसिपल बोर्ड आफ ट्रस्टीज़' (1897-98) में 'इंडस्ट्रियल एजूकेशन' के 'स्टेट कमीशन' (1908-09) में, व 'सिटी प्लानिंग बोर्ड, बोस्टन सिटी' (1914-17) में सक्रिय सदस्या के नाते उनकी सेवाएं उल्लेखनीय रहीं। अध्यापन में भी, कहते हैं, वे अपने विद्यार्थियों को रंग व वर्णभेद के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए सदा तैयार करती रहती थीं। उनके समाजशास्त्रीय व्यावहारिक अध्ययन भी या तो समुदायों में होते थे या म्युनिस्पल संस्थानों में। अध्यापन-काल में ही उनका सम्बन्ध अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं व योजनाओं से हो गया था। 1905 06 में उन्होंने आस्ट्रिया व हंगरी का दौरा कर वहां की अमेरिकन बस्तियों का अध्ययन किया था।

आगामी वर्षों में भी वे इन क्षेत्रों की यात्रा करती रहीं। उनकी 1910 में प्रकाशित पुस्तक 'अवर स्लेविक फैलो सिटीज़न्स' इसी अध्ययन पर आधारित है। इसमें उन्होंने आव्रजन व प्रवासी समस्या का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

पर उनका प्रमुख कार्य प्रारम्भ होता है, 1915 से, जब कि हेग में आयोजित 'इंटरनेशनल कांग्रेस आफ वीमेन' में वे प्रतिनिधि बनकर गईं। हेग इसके पूर्व भी अनेक शांति-आंदोलनों का गढ़ रह चुका था। इस कांग्रेस में जेन एडम्स ('हल हाउस' की संस्थापिका व प्रमुख शांतिवादी) शिकागो के 'हल हाउस' से शांति-समर्थक चालीस स्वयंसेविकाओं का दल लेकर वहां गई थीं और एमिली बाल्च 'वीमेन इंटरनेशनल कमेटी फार परमानेंट पीस' नामक एडहाक कमेटी की ओर से। कान्फ्रेंस के बाद प्रमुख सदस्याएं छोटे-छोटे दल लेकर विभिन्न देशों की सरकारों के पास अपने शांति-प्रस्ताव लेकर गई थीं। कुमारी बाल्च से तीन अन्य सदस्याओं के साथ स्कॅडेनेवियन देशों की तथा रूस की यात्रा की। इस मिशन की प्रकाशित रिपोर्ट 'वीमेन एट द हेग' (1915) के सात में से तीन अध्याय एमिली बाल्च ने ही लिखे थे। 1916 के वसंत में उन्होंने स्टाकहोम में हेनरी फोर्ड द्वारा स्थापित

'न्यूट्रल कांफ्रेंस फार कन्टीन्यूअस मेडीएशन' में भी भाग लिया था।

गर्मियों में न्यूयार्क लौटकर वे सैनिकवाद के विरोध में पूरी तरह सक्रिय हो गईं। इस कमेटी में तथा स्कूलों में सैनिक शिक्षा विरोध कमेटी में भाग लेकर उन्होंने निरस्त्रीकरण व शांति के पक्ष में अपनी आवाज़ बुलंद की। 'फेलोशिप आफ रिकंसीलिएशन' में भी वे सक्रिय रहीं। फिर जब अमेरिका युद्ध में लिप्त हुआ तो उनकी शांति-समर्थक गतिविधियों के केन्द्र वेलेज़ली कालेज को संकट से बचाने के लिए उन्होंने लम्बी छुट्टी ले ली और युद्ध-समाप्ति वर्ष 1918 तक अपनी नौकरी से अनुपस्थित रहीं। 1918 में फैकल्टी तथा विद्यार्थियों के विरोध के बावजूद उन्हें नौकरी पर वापस नहीं लिया गया। कारण था, युद्ध व शांति-सम्बन्धी उनके घोषित विचार व पूरे युद्धकाल में उनकी कालेज-सेवा से अनुपस्थिति। उनकी पुस्तक 'एप्रोचेज़ टू द ग्रेट सेटलमेंट' इसी समय की लिखी हुई है। इसमें उनकी सुझाई गई शांति-शर्तों का सूक्ष्म विश्लेषण है। यहां यह उल्लेखनीय है कि 1946 में उनके लिए नोवल पुरस्कार की सिफारिश करने में एक नाम इसी वेलेज़ली कालेज के चेयरमैन का था। इसके पूर्व 1935 में, सम्भवतः उनकी बरखास्तगी के पछतावे के रूप में उन्हें कालेज के एक समारोह में मुख्य वक्ता के रूप में सादर आमंत्रित भी किया जा चुका था। वेलेज़ली कालेज से अवकाश प्राप्त कर एमिली बाल्च ने एक साल तक 'नेशन' के सम्पादकीय विभाग में कार्य किया, फिर शान्ति के पक्ष में निरन्तर आवाज़ उठाने वाली अपनी अंतर्राष्ट्रीय महिला संस्था में ही पूरा समय देने लगीं।

1919 में ज्यूरिख में 'इंटरनेशनल कांग्रेस आफ वीमेन' की द्वितीय मीटिंग हुई। यहीं शांति-आंदोलन को स्थायी रूप देने के लिए एक स्थायी संस्था की मांग उठी। तभी 'वीमेंस इंटरनेशनल लीग फार पीस एण्ड फ्रीडम' नाम की यह वर्तमान संस्था अस्तित्व में आई। उसी वर्ष जिनेवा में इस संस्था का मुख्यालय भी स्थापित हुआ। जेन एडम्स इंटरनेशनल प्रेसीडेंट चुनी गई व एमिली बाल्च इंटरनेशनल सेक्रेटरी। 1935 में जेन एडम्स की मृत्यु के बाद 1936 से इन्हें ही आनरेरी अध्यक्ष-पद सम्भालना पड़ा। इसके साथ अमेरिकन शाखा की कार्य-

कारिणी में रहकर वे राष्ट्रीय स्तर पर भी कार्य करती रहीं। एक बार जब उनकी यह अंतर्राष्ट्रीय संस्था आर्थिक संकट में घिर गई तो उन्होंने सेक्रेटरी के नाते अपना अठारह महीने का वेतन छोड़ दिया। इस तरह व अन्य साधनों से धन जुटाकर वे संस्था को फिर से आत्मनिर्भर बनाने में समर्थ हो गई थीं।

'वीमेंस इंटरनेशनल लीग फार पीस एण्ड फ्रीडम' का कार्य अधिकांश रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व रूप 'लीग आफ नेशंस' से संबद्ध था। इस नाते मिस बाल्च को विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञों, प्रशासकों व शासकों से सम्पर्क का अवसर मिला। उन्होंने अपने कार्य में लीग से सहायता लेने के साथ लीग के अनेक कार्यों में भी हाथ बंटाया—जैसे ड्रग कंट्रोल नियम बनाने में, एलबानिया को प्रवेश दिलाने में, लाइबीरियन विभाग को देखने में तथा 'एविएशन' के अंतर्राष्ट्रीयकरण में। पर उनका प्रमुख योगदान निरस्त्रीकरण की दिशा में ही रहा।

1936 में अंतर्राष्ट्रीय वीमेंस लीग की ओर से हैती की स्थिति का निरीक्षण करने के लिए वे अपना एक गैरसरकारी दल लेकर गईं। 'आक्यूपाइड हैती' नामक रिपोर्ट (1927) में अधिकांश लेखन उनका था व सम्पादन भी उन्होंने ही किया था। अनेक भाषणों व आंदोलनों द्वारा उन्होंने हैती में अमेरिकन हस्तक्षेप का विरोध किया। बाद में अमेरिकी सरकार द्वारा उनकी अनेक सिफारिशें मंजूर कर ली गईं।

1944 में उन्होंने शांति-शर्तों की एक सूची तैयार की व उसे अपनी अंतर्राष्ट्रीय संस्था की अमेरिकी शाखा से प्रकाशित करवाया। 1933 से लगातार वे साम्राज्यवाद व तानाशाही से पीड़ित जनता का पक्ष ले रही थीं। अब उन्होंने अमेरिकी एटम बम के शिकार जापानियों के पक्ष में भी बोलना व लिखना शुरू कर दिया था। दरअसल जब द्वितीय युद्ध शुरू हुआ और विशेष रूप से जब अमेरिका उसमें शामिल हुआ तो अपनी विचारधारा व घोषित राष्ट्रीय नीति में कोई तर्कसम्मत समझौता न कर पाने की स्थिति में वे एक लम्बे मानसिक संघर्ष में फंस गई थीं। ऐसा उन्होंने स्वयं कहीं स्वीकार किया है। इस अवधि में अपना अधिकांश समय वे विभिन्न युद्ध-समझौतों

में संशोधन के लिए सुझाई गई दलीलों के प्रकाशन में ही लगाती रहीं।

द्वितीय युद्ध के बाद हुई 'वीमेंस इंटरनेशनल लीग फार पीस एंड फ्रीडम' की दसवीं कांफ्रेंस के लिए लग्ज़मबर्ग जाते समय प्रेस-रिपोर्टरों को दी गई इंटरव्यू में उन्होंने कहा था, "मेरी राय में स्थायी विश्व-शांति के लिए अंतर्राष्ट्रीय शांति पार्टी के बजाय स्त्रियों की अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टी होनी चाहिए, जिसमें सभी देशों की शांतिप्रिय राजनैतिक नेत्रियां शामिल होकर स्थायी विश्वशांति के लिए कोई व्यावहारिक योजना बनाएं और फिर अपनी संगठित शक्ति से उसे अमल में लाएं। दूसरे, मैं चाहती हूं कि इस संस्था की गतिविधियों को शांति-समर्थक प्रमुख महिलाओं तक ही सीमित न रखकर उसे समस्त कामकाजी स्त्रियों व सामान्य गृहिणियों तक फैलाया जाए। इस तरह लीग की शक्ति बढ़ेगी व उनकी आवाज़ बुलंद होगी।"

अपने अंतिम दिनों से पूर्व एक बार जब वे ब्रोंकाइल दमा से बुरी तरह पीड़ित हो अस्पताल की शय्या पर थीं और अशक्तता के कारण उसे बहुत कठिनाई से झेल पा रही थीं, 'न्यूयार्क वर्ल्ड टेलीग्राम' के रिपोर्टर ने उनसे अस्पताल में भेंट की। भेंटकर्ता ने लिखा, "इस अवस्था में भी उनकी मानसिक शांति व विश्वशांति की अदम्य चाह देखते ही बनती थी। मनुष्य की भलाई में उनका विश्वास पूर्ववत् बरकरार था।" उन्होंने कहा, "यदि लोग संगठित हों और उनका भाग्य कुछ सिरफिरे राजनीतिज्ञों के हाथ में न सौंप दिया जाए तो सर्वप्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र मिलकर एक ऐसे विश्वराज्य की कल्पना को साकार कर सकते हैं, जहां हर मानव भय से मुक्त रह सके। ऐसे शांतिपूर्ण विश्वराज्य की सम्भावना में सन्देह करना कायरता होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि न केवल बहुमत से बल्कि विभिन्न सरकारों की परस्पर सहमति से प्राप्त सर्वसम्मति से संसार में नैतिक वातावरण लाया जा सकता है। जब तक सभी निर्णय परस्पर सहमति से संभव नहीं होते, हमें इस दिशा में कार्य करते रहना चाहिए। साम्राज्य-लिप्सा व तानाशाही सभ्य संसार के लिए अभिशाप हैं। जब तक अंतर्राष्ट्रीय युद्ध-समझौते कायम हैं या नये समझौते होते

रहेंगे, हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि स्थायी शांति स्थापित हो सकेगी।"

सन् 1947 में तत्कालीन राष्ट्रपति ट्रूमैन को अपने पांच सौ तैंतालीस साथियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक ज्ञापन देकर उन्होंने मांग की थी कि युद्धकाल में शांतिवादियों पर लगाई गई सभी पाबंदियों और उनपर चलाए गए सभी मामलों को वापस लिया जाए। वे उन तीन महिलाओं में से भी एक थीं जो शांति मिशन के 'वर्ल्ड-ट्रिप' के लिए चुनी गई थीं।

समाजशास्त्रीय अध्ययनों व रिपोर्टों के अलावा कुमारी बाल्च ने अपने अवकाश के क्षणों में कविताएं भी लिखी हैं और रेखाचित्र भी बनाए हैं। अपनी मित्रमण्डली को लेकर उन्होंने 'सोसाइटी आफ फ्रेंड्स' की स्थापना भी की थी। इन निजी हाबियों और सधे हुए शांत व्यक्तित्व के कारण अंतिम समय तक वे जमकर कार्य करती रहीं। एक बार उनसे किसीने उनकी निरन्तर बनी रहने वाली शक्ति का राज पूछा तो उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया, "मेरे दादा कहा करते थे कि औरत जितनी बूढ़ी होगी, उतनी ही सख्त और सशक्त होगी।" जटिल प्रश्नों का ऐसा सरलीकरण उनकी विशेषता रही।

प्रमुख पुस्तकें

1. पब्लिक असिस्टेंस आफ द पुअर इन फ्रांस
2. अवर स्लेविक फेलो सिटीज़न्स
3. एप्रोचेज़ टू द ग्रेट सेटलमेंट
4. रिफ्यूजीज़ एज़ एसेट्स

व अन्य कई अध्ययन रिपोर्टें

उनकी कविता-पुस्तक 'द मिराकिल्स आफ लिविंग' सबसे अंत में सन् 1941 में जाकर प्रकाशित हुई।

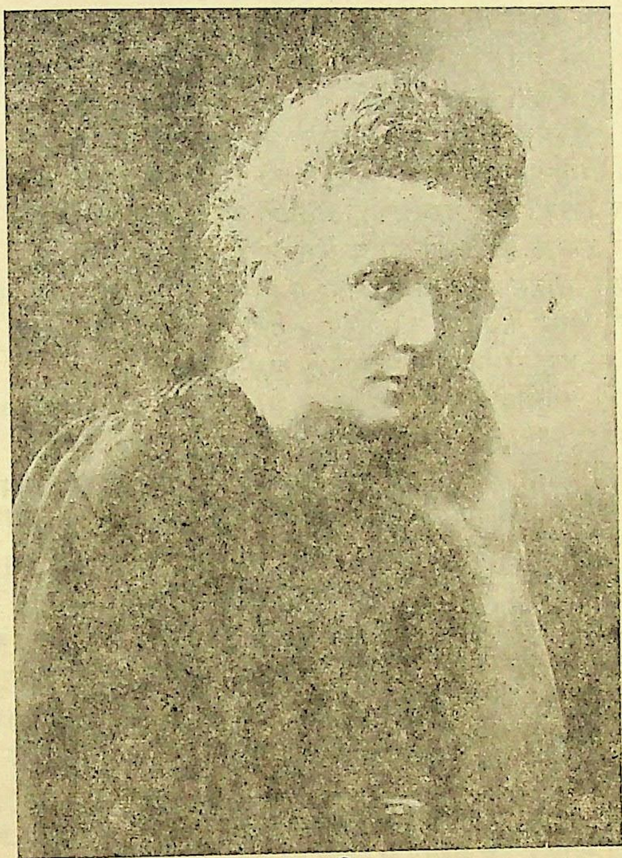
मेरी क्यूरी

(1867-1934)

पहला नोबल पुरस्कार सन् 1901 में दिया गया था व 1903 में प्रथम बार किसी महिला को। समूचे संसार के महिला वर्ग में विज्ञान की प्रेरणा भरने वाला यह नाम है, मैडम मेरी क्यूरी।

मेरी क्यूरी का नाम कौन नहीं जानता। सन् 1903 में नोबल पुरस्कार। फिर सन् 1911 में दोबारा नोबल पुरस्कार। पहली बार यद्यपि पुरस्कार के भागीदार तीन व्यक्ति थे: श्री हेनरी बैकरेल, श्री पियरे क्यूरी और श्रीमती मेरी क्यूरी। पर नोबल पुरस्कार पाने वाली वह विश्व की प्रथम महिला थीं। फिर दूसरी बार जब उन्हें अकेले नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया तब भी दो बार यह पुरस्कार जीतने वाली विश्व में वह अकेली महिला ही थीं।

पहला पुरस्कार भौतिकी में था, दूसरा रसायन में। प्रथम पुरस्कार की घोषणा के साथ ही 1903 में सम्पूर्ण विश्व का ध्यान मैडम क्यूरी की ओर आकर्षित हो गया था। संसार-भर के समाचारपत्रों ने उनके सम्मान में विशेषांक निकाले। लाखों फोटोग्राफरों ने उनके चित्र लिए। विभिन्न देशों के अनगिनत व्यक्तियों ने उनके हस्ताक्षर प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। स्थान-स्थान से उन्हें भोजों और समारोहों में सम्मिलित होने के आमंत्रण मिले। अनेक उपाधियों से उन्हें विभूषित किया गया। पर मैडम क्यूरी इस सबसे तटस्थ, एकान्त जीवन की अभिलाषी थीं। उनके अनुसार यह उनके अनुसंधान-कार्य की समाप्ति नहीं, उसका प्रारम्भ था। अपने कार्य को वह निरन्तर साधना द्वारा आगे बढ़ाना चाहती थीं। और यही उन्होंने किया भी। तभी तो विश्व को विज्ञान की दुर्लभ उपलब्धियां देकर, दोबारा नोबल पुरस्कार से सम्मानित हो, विश्व की महानतम वैज्ञानिक महिला कहलाईं— कहलाईं क्या, विज्ञान की खोजों के इतिहास में अपना



मेरी क्यूरी
भौतिकी और रसायन पर 1903 और 1911 में नोबल पुरस्कार

नाम सदा के लिए अमर कर गईं। सारा संसार आज उन्हें 'रेडियम-महिला' के नाम से याद करता है।

मैडम क्यूरी की संसार को देन है: पोलोनियम, रेडियम और रेडियोधर्मी विकिरणों का ज्ञान। उनके अनुसंधान-कार्य में उनके पति भी शामिल थे। क्यूरी दम्पती ने बड़ी कठिनाइयां उठाकर, वर्षों कठोर परिश्रम करके यह सफलता प्राप्त की थी। पर मैडम क्यूरी का विवाह-पूर्व आरंभिक जीवन तो और भी कठिन था। घोर आर्थिक संकटों और तकलीफों, बाधाओं का सामना करते हुए आगे बढ़कर उन्नति के शिखर को छू लेना कोई आसान काम नहीं। मेरी ने अपने साहस और अध्यवसाय से ही इस कठिन काम को आसान बनाया, भाग्य के किसी चमत्कार से नहीं। हां, मेरी के साहस और लगन की कहानी किसी चमत्कार से कम नहीं।

मेरी स्क्लोदोवस्का[1] का जन्म एक निर्धन पोलिश परिवार में 7 नवम्बर, 1867 को हुआ। परिवार खेतिहर था पर मेरी के जन्म के समय पिता वारसा के हाई स्कूल में भौतिकी के अध्यापक थे। पिता डाक्टर स्क्लोदोवस्का विज्ञानवेत्ता के साथ एक अच्छे विद्वान भी थे। जर्मन, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक, इंग्लिश आदि कई भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे। फिर भी उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी। कारण, ज़ारशाही के अत्याचार से अपनी मातृभूमि को मुक्त कराने की इच्छा रखने वाले पोलिश क्रान्तिकारियों से उनकी सहानुभूति थी, जिससे वे नौकरी से हाथ धो बैठे। धीरे-धीरे यह स्थिति आ गई कि अपने चार बच्चों के लिए खाना, कपड़ा जुटाना भी उनके लिए मुश्किल हो गया।

मेरी की मां आर्थिक तंगी और अधिक काम के बोझ से अपना स्वास्थ्य खोकर इस संसार से विदा हो गईं। मेरी उस समय दस वर्ष की थी। कुशाग्र बुद्धि और प्रयोगात्मक विज्ञान के प्रति रुचि उसे पिता से विरासत में मिली थी। वह इस छोटी-सी आयु में ही घर के काम के साथ पिता की प्रयोगशाला में हाथ बंटाने लगी। ढीला-सा गाउन पहने,

1. रूसी उच्चारण मारिया स्क्लोदोवस्का

कंधे पर तौलिया लटकाए जब वह रोज़ प्रयोगशाला की सफाई करने पहुंच जाती, एक-एक यंत्र को झाड़-पोंछकर यथास्थान सजाने से पूर्व उनका ध्यान से निरीक्षण करती तो पिता चकित रह जाते। विज्ञानवेत्ता वृद्ध प्रोफेसर उन दिनों अपनी स्थिति से बहुत चिन्तित और परेशान रहते थे। इसलिए अपनी प्रयोगशाला के प्रति भी कुछ उदासीन हो गए थे। मेरी ने अपनी लगन से उन्हें फिर उस ओर मोड़ लिया। पर उनके अन्तर में जो कोलाहल था, उसकी छाप बच्चों के सुकोमल मन पर पड़े बिना न रही। मेरी छोटी आयु में ही प्रौढ़ों की तरह गम्भीरता से सोचने और ज़िम्मेदारी उठाने लगी थी।

धीरे-धीरे वैज्ञानिक प्रयोगों में भी वह रुचि लेने लगी। दोपहर बाद स्कूल से लौटकर अपने पिता के पास प्रयोगशाला में चली जाती और नवीन प्रयोगों को ध्यान से देखती। पिता ने पहले तो उसकी इस बढ़ती अभिरुचि को केवल बाल-औत्सुक्य की संज्ञा दी, बाद में मेरी की लगन देखकर उसे नियमित रूप से विज्ञान की शिक्षा देने लगे।

विज्ञान के प्रति रुचि के अलावा अपनी मातृभूमि पोलैण्ड से गहरा प्रेम और रूढ़ियों से विद्रोह की भावना भी उसे पिता से विरासत रूप में मिली थी। ज़ारशाही की क्रूरताओं के विरुद्ध पोलिशों में असंतोष दिनों-दिन बढ़ रहा था। प्रतिशोध की भावना उग्र रूप धारण करती जा रही थी। क्रान्तिकारियों की नित्य चोरी-छिपे सभाएं होती थीं और पिता के साथ मेरी भी उन सभाओं में भाग लेती थी। एक बार तो वह बन्दी बना लिए जाने की स्थिति में भी आ गई थी। तब उसे वारसा छोड़कर पेरिस चले जाना पड़ा, जहां घोर धार्मिक कठिनाई उठाकर उसने अपना अध्ययन आगे बढ़ाया।

वारसा के हाई स्कूल में अपनी विद्रोही प्रकृति के कारण वह अध्यापकों के क्रोध का शिकार हुई। पर शिक्षकों के असहयोग के बावजूद हाई स्कूल परीक्षा में प्रथम आई और स्वर्णपदक प्राप्त किया। परीक्षा के बाद पिता ने सोचा, कहीं अत्यधिक परिश्रम से यह भी मां की तरह बीमार न पड़ जाए, इसलिए उसे एक साल की छुट्टी मनाने गांव भेज दिया गया। इस अवधि में ही उसे खेतों में घूमने, खेलने और नाचने-गाने का अवसर मिला। उसके बाद तो उसका सारा

जीवन तपस्या की एक कहानी है।

मेरी के वारसा लौटने पर उसकी बड़ी बहन ब्रोन्या ने सोर्बों (पेरिस) में जाकर डाक्टरी पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। उस समय न तो कोई लड़की पोलैण्ड के किसी विश्वविद्यालय में पढ़ रही थी, न लड़कियों को विश्वविद्यालय में भेजने लायक घर की आर्थिक स्थिति ही थी। पर मेरी ने बहन की इच्छा देख तुरन्त प्रस्ताव रखा, "तुम पेरिस जाकर पढ़ो, मैं गवर्नेस का काम ढूंढ़कर तुम्हें खर्च भेजूंगी। डाक्टर बन जाने के बाद तुम मेरी मदद कर देना, फिर मैं पढ़ लूंगी।" इस तरह ब्रोन्या डाक्टरी पढ़ने चली गई और मेरी को एक मूर्ख-सी व सख्त स्वभाव की महिला के यहां गवर्नेस बनना पड़ा। यहीं उस महिला के एक खुशमिज़ाज लड़के ने मेरी को पसन्द कर लिया। दोनों में कुछ समय प्रेम-सम्बन्ध चला। पर मां ने एक गवर्नेस के साथ अपने लड़के की शादी करने से इन्कार कर दिया।

इस प्रथम प्यार में असफल होने पर मेरी के दिल को इतनी चोट लगी कि उसने आजीवन अविवाहित रहकर स्वयं को अध्ययन और विज्ञान की खोज में लगाने का निश्चय किया। उसने एक दूसरी जगह नौकरी कर ली और ब्रोन्या को खर्च भेजती रही। साथ ही कंजूसी से पैसे बचाकर अपनी पढ़ाई भी फिर आरम्भ कर दी। मेरी के इस त्याग से लाभ उठाकर ब्रोन्या एक दिन डाक्टर बन गई और उसने अपने एक साथी डाक्टर से विवाह कर लिया। इसके बाद वह मेरी का खर्च उठाने के लिए तैयार हो गई, पर मेरी ने इन्कार कर दिया। वह अपने पैरों पर खड़ी रहकर ही अपनी पढ़ाई करना चाहती थी, चाहे इसके लिए उसे कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

पढ़ने की अदम्य लालसा और आगे बढ़ने की साध लिए मेरी अंत में अध्ययन के लिए पेरिस पहुंच गई। यहां एक गरीब बस्ती में गंदी, अंधेरी, सीलन-भरी कोठरी में रहती थी, जिसमें हवा-रोशनी के लिए छत में एक छेद भर था। वह इतनी गरीब थी कि प्राइवेट ट्यूशन और सोर्बों लेबोरेटरी में बोतलें धोने का काम करके भी मुश्किल से ही पढ़ाई का खर्च जुटा पाती। अनेक बार उसे भूखे पेट या आधे पेट खाकर ही रह जाना पड़ता। उसके जीवन की कठोर

साधना देखकर तथा लेबोरेटरी की बोतलें धोने में उसकी गहरी रुचि देखकर भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष ग्रेवियल लिपमैन और सुप्रसिद्ध गणितज्ञ हेनरी पायनकेअर का ध्यान इस लड़की की ओर आकर्षित हुआ।

अध्यापक और सहपाठी मेरी में रुचि लेने लगे थे और उसके बारे में जानकारी पाने के इच्छुक थे, पर मेरी थी कि सदैव प्रथम पंक्ति में बैठती और लेक्चर समाप्त होते ही छाया की तरह गायब हो जाती। सामाजिक उत्सवों में वह कभी शरीक नहीं हुई। अल्पभाषिणी और कुशाग्र बुद्धि मेरी स्क्लोदोवस्का उन दिनों बिल्कुल एक तपस्विनी की तरह जीवन बिताती थी—अलग-थलग, एकान्त अध्ययन में लीन। सहपाठी अक्सर कहते सुने जाते, 'लकड़ी इतनी सोहिनी है पर मुसीबत है कि किसीसे बोलती ही नहीं। वह तो बस किताबों और लेक्चरों में ही खोई रहती है।'

मेरी भौतिकी, रसायन, गणित, कविता, संगीत, ज्योतिष विज्ञान सभी विषयों का एक साथ अध्ययन कर रही थी। फिर ज़्यादा रुचि उसकी वैज्ञानिक प्रयोगों में ही थी। उसने घोषणा की कि वह एक साथ दो विषयों में विशेष अनुसंधान कर एम० एस-सी० करेगी। विषय चुने गणित और भौतिकी। भौतिकी में वह प्रथम आई, गणित में द्वितीय। तभी ग्रेवियल लिपमैन और हेनरी पायनकेअर ने कृपापूर्वक उसकी भेंट पेरिस के एक सुप्रसिद्ध डाक्टर के पुत्र पियरे क्यूरी से कराई।

पियरे क्यूरी भी मेरी की तरह विज्ञान को समर्पित था। अठारह वर्ष की अवस्था में एम० एस-सी० पास कर लेने के बाद वह पेरिस के एक भौतिकी व रसायन संस्थान की प्रयोगशाला का अध्यक्ष था। हर समय वैज्ञानिक खोजों में लगा रहता था और स्त्री के लिए उसके जीवन में कोई स्थान न था। उसने 'क्रिस्टलों' की संरचना में सिमैट्री के सिद्धान्त को विकसित किया था। दाब-विद्युत् (पाइजो-इलैक्ट्रिसिटी) की खोज की थी और विद्युत् की सूक्ष्म मात्रा को मापने के लिए 'क्यूरी स्केल' तथा कुछ अन्य संवेदनशील उपकरण विकसित किए थे। थोड़े समय में ही अपनी खोजों के कारण पियरे क्यूरी फ्रांसीसी वैज्ञानिकों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हो गया था। प्रोफेसरों ने ऐसे लगनशील व्यक्ति के साथ मेरी जैसी धुनी युवती की भेंट जानबूझ-

कर कराई थी और यह भेंट ऐतिहासिक प्रमाणित हुई।

दोनों ही उत्साही, प्रतिभावान, विज्ञानप्रेमी और पुरुषार्थी थे, इसलिए विज्ञान को समर्पित दो व्यक्तित्व धीरे-धीरे एक होकर पूरी तरह विज्ञान के ही हो गए। एक दिन पियरे ने मेरी को लिखा, "विज्ञान व मानवता के हित में हमें एक हो जाना चाहिए।" मेरी ने आमंत्रण को स्वीकार किया और इस प्रकार 1895 में छत्तीस वर्षीय पियरे क्यूरी और अट्ठाईस वर्षीया मेरी विवाह-सूत्र में बंधकर एक पथ के पथिक बन गए। शादी बहुत सादगी से सम्पन्न हुई और पति-पत्नी ने हनीमून साइकिलों पर घूमकर मनाया।

मेरी ने अपने अनुसंधान-कार्य को आगे बढ़ाया, पति के अनुसंधान-कार्य में हाथ बंटाया और घर भी संभाला। दो पुत्रियों आइरीन और ईव को जन्म देकर मां भी बनीं और विश्व की महान वैज्ञानिक भी। बड़ी लड़की आइरीन की भी विज्ञान में विशेष रुचि रही और उसने भी 1935 में रसायन शास्त्र में नोबल पुरस्कार प्राप्त किया।

पति-पत्नी आरम्भ से ही एक-दूसरे के सहायक थे। दोनों मिलकर घर का और प्रयोगशाला का कार्य करते। पियरे झाड़ू लगाते तो मेरी खाना पका लेती। फिर दोनों प्रयोगशाला के काम में जुट जाते। विवाह के बाद एक लड़की को जन्म देकर भी मेरी क्यूरी ने पढ़ाई जारी रखी और कठोर परिश्रम से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। डाक्टरेट के लिए उन्हें टैम्पर्ड इस्पात के चुम्बकीकरण पर मोनोग्राफ लिखने से 'फेलोशिप' मिल गई थी। पढ़ाई से बचा समय मेरी घर में व पति के अनुसंधान-कार्य में लगाती थीं।

क्यूरी दम्पती बहुत कम लोगों से मिलते थे, बहुत कम बाहर निकलते थे जिससे कि उनके कार्य में व्याघात न हो। परस्पर वैज्ञानिक चर्चा में ही उन्हें सुख मिलता था या फिर कार्य से थककर अपनी बच्चियों के साथ मनोरंजन में। वे कभी घनघोर परिश्रम से कार्य में जुटे रहते, कभी गम्भीर चर्चाओं में व्यस्त रह विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाते रहते। एक टूटे-फूटे छप्पर के तले अपनी छोटी-सी घरेलू प्रयोगशाला में ही उनका जीवन सिमट गया था। बाहर की दुनिया की उन्हें विशेष खबर ही न थी। इसी गम्भीर, कर्ममय, रुक्ष जीवन में

उनके परस्पर प्यार की निश्छल निर्झरिणी बहती थी। दो नन्हीं चिड़ियां (बच्चियां) उसके किनारे किल्लोल करती थीं, तो फिर वह कर्म की रुक्षता उसके आनन्द में परिणत क्यों न होती! और किसी चीज़ की अपेक्षा उन्हें होती ही क्यों!

सन् 1860 से ही कुछ वैज्ञानिकों द्वारा वायु में कुछ ऐसे प्राकृतिक खनिजों की उपस्थिति बताई जा रही थी, जो विद्युत् शक्ति से सम्पन्न थे। सर जोज़ेफ टामसन और कुछ अन्य अन्वेषकों ने इन किरणों में ऋणावेशित कण पाए थे, जिनमें हाइड्रोजन परमाणु का हज़ारवां अंश था। सन् 1896 में पियरे क्यूरी के एक सहयोगी हेनरी बैकरल को वैज्ञानिक परीक्षण के दौरान सहसा ज्ञात हुआ कि यूरेनियम से हरी, पीली, नीली दमक वाली अद्‌भुत प्रकाशमय रश्मियां फूटती हैं। मेरी क्यूरी और पियरे क्यूरी इस खोज से इतने प्रभावित हुए कि अपारदर्शी पदार्थों को भी भेद सकने वाली इन रहस्यमय किरणों के अनुसंधान-कार्य को ही मेरी ने अपने डाक्टरेट का विषय चुना। यद्यपि डाक्टरेट की डिग्री मेरी को लेनी थी पर पति-पत्नी दोनों ही इस अनुसंधान में जुट गए। बाद में मैडम क्यूरी ने ही इन किरणों को रेडियोधर्मिता (रेडियो एक्टिविटी) का नाम दिया। यही नाम आज भी प्रचलित है। चूंकि इस अनुसंधान के प्रथम चरण का श्रेय हेनरी बैकरल को ही था, इसलिए 1903 का नोबल पुरस्कार आधा हेनरी बैकरल व आधा क्यूरी-दम्पति को प्रदान किया गया।

पियरे क्यूरी यद्यपि अपने निजी वैज्ञानिक अन्वेषण में लगे थे पर इस नये तत्त्व की खोज दोनों ने मिलकर की थी। बड़ा ही कठिन कार्य था। न ढंग की प्रयोगशाला थी, न उपकरण। सीलनयुक्त ठंडे शेड में अपने पुराने उपकरणों से ही उन्होंने यूरेनियम की प्रकृति की जांच की और शीघ्र पता लगा लिया कि यह रहस्यमय किरणें विकिरण करना यूरेनियम परमाणु का एक आधारभूत गुण है। इस खोज से ही आगे चलकर मनुष्य परमाणु में निहित अनन्त शक्ति के विविध उपयोग सीख पाया।

फिर उन्होंने खोज को आगे बढ़ाया और पाया की यह शक्तिशाली किरणें विकिरित करने का गुण यूरेनियम के अलावा अन्य

तत्त्वों के परमाणुओं में भी था। इस विकिरण-क्षमता को ही मेरी क्यूरी ने रेडियोधर्मिता (रेडियो एक्टिविटी) का नाम दिया, जिसने विज्ञान के क्षेत्र में नई क्रान्ति ला दी। तत्त्व के सूक्ष्मतम कण परमाणु के अविभाज्य होने की पूर्व धारणा बदल गई और वह विभाज्य हो गया।

अपने प्रयोगों में फिर उन्हें पता चला कि यूरेनियम और थोरियम के अशुद्ध लवण शुद्ध लवणों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं, तो इन अशुद्धियों में ही अतिरिक्त रेडियोधर्मिता होनी चाहिए। इस अज्ञात तत्त्व की रेडियोधर्मिता यूरेनियम की तुलना में चार सौ गुना अधिक थी। इसे जब नाम देने का प्रश्न आया तो मेरी क्यूरी का देश-प्रेम जाग उठा और उन्होंने अपनी मातृभूमि के नाम पर उसका नाम रखा—पोलोनियम।

'पोलोनियम' की खोज जुलाई 1898 में हुई थी। इसके पांच महीने बाद दिसम्बर, 1898 में ही 'रेडियम' की खोज कर ली गई, जिसकी रेडियोधर्मिता यूरेनियम से बीस लाख गुना अधिक थी।

रेडियम खोज लिया गया। पर वह तत्त्व रूप में न था, क्लोरीन के साथ संयुक्त था। वे उसे तत्त्व रूप में अलग करना चाहते थे पर उस अन्वेषण के लिए उन्हें बहुत अधिक रासायनिक द्रव्य चाहिए था, जिसे खरीदने में वे असमर्थ थे। अन्त में आस्ट्रिया सरकार की मदद से बोहिमिया की खानों से उन्हें एक टन कच्ची धातु (पिच ब्लैंड) मिल गई। केवल ढुलाई का खर्च ही उन्हें देना था। क्यूरी दम्पती रात-दिन कड़ा परिश्रम कर उसे अग्नि पर गलाते, पसाते, छानते, निथारते और साफ करते। चार वर्ष तक पति-पत्नी मज़दूरों की तरह जंग लगे पाइप वाली पुरानी भट्टी के दमघोंटू वातावरण में हांफते-खांसते काम करते रहे। अंत में 1902 में एक रात उनका श्रम सफल हुआ। एक टन कच्ची धातु से उन्हें कुल एक छोटी चम्मच (कुछ मिलिग्राम) रेडियम प्राप्त हुआ। इसमें से प्रस्फुटित होने वाली किरणें इतनी तेज़ थीं कि रेडियम की ट्यूब छूने-मात्र से पियरे के हाथ जल गए थे।

1903 में मैडम क्यूरी ने 'पेरिस फैकल्टी आफ साइंस' के समक्ष

भाषण देकर अपने आविष्कार को लोगों के सामने रखा और उसके प्रयोग के लाभ समझाए। उन्हें डाक्टरेट की उपाधि तो मिली ही, इस खोज ने वैज्ञानिक जगत् में तहलका भी मचा दिया। इसी वर्ष रायल सोसाइटी में रेडियम पर भाषण देने के लिए क्यूरी दम्पती को बुलाया गया। लंदन जाकर उन्होंने रेडियम के क्रियात्मक प्रयोग दिखाकर लोगों को चकित कर दिया। रायल संस्था की ओर से उन्हें 'डेवी' पदक प्रदान किया गया। इसके बाद तो सम्मानों और पुरस्कारों का तांता ही लग गया।

रेडियम संसार की सर्वाधिक मूल्यवान धातु थी। उसका मूल्य था प्रति ग्राम एक लाख पचास हज़ार डालर। यदि क्यूरी दम्पती रेडियम-निस्सारण की विधि को पेटेंट करा लेते तो रातों-रात धनकुबेर बन सकते थे। पर यह उनका उद्देश्य न था। उन्होंने मानवता के हित में कार्य किया था और वही लेना स्वीकार कर सकते थे, जो समाज उन्हें सम्मान के साथ प्रदान करता। और समाज से उन्हें भरपूर सम्मान मिला भी। आर्थिक समस्या भी हल हो चुकी थी, अधिक का लालच वे क्यों करते! यही नहीं, क्यूरी दम्पती ने पदों, उपाधियों से भरपूर बचने का प्रयत्न कर स्वयं को विज्ञान-कार्य में लगाए रखना ही पसन्द किया। प्रसिद्धि और लोगों से बचने के लिए मैडम क्यूरी एकदम सादी वेशभूषा में रहतीं और बहुत कम बाहर निकलतीं।

पियरे क्यूरी को शीघ्र ही विज्ञान ऐकेडेमी का सदस्य चुन लिया गया। साथ ही वे सोखों में प्रोफेसर नियुक्त कर दिए गए। पहली बार उन्हें एक सुसज्जित प्रयोगशाला में काम करने का अवसर मिला। पर अधिक दिन यह खुशी उन्हें फली नहीं। 19 अप्रैल, 1906 को पियरे क्यूरी की एक सड़क-दुर्घटना में मृत्यु हो गई। मेरी क्यूरी पिछले 11 वर्षों से कभी एक दिन के लिए भी पति से अलग नहीं हुई थीं। दोनों पति-पत्नी ही नहीं, प्रेमी और सहकर्मी भी थे। इसलिए मैडम क्यूरी के लिए यह आघात सहन करना आसान न था। कुछ दिन उन्होंने विक्षिप्त की-सी स्थिति में काटे। फिर बच्चियों की खातिर काम करने को तैयार हो गईं। अपने पति और अपने प्रिय क्षेत्र विज्ञान से अलग होना भी कठिन था। अतः उन्होंने पति के रिक्त स्थान पर सोखों की

प्रोफेसरशिप स्वीकार कर ली और नई प्रयोगशाला में नये प्रयोग शुरू कर दिए।

मैडम क्यूरी इसके बाद भी निरन्तर शोध-कार्य करती रहीं। उनका अगला कार्य था—रेडियम की स्वास्थ्यकारी शक्ति की खोज। 1911 में उन्हें पुनः नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। पहली बार की तरह दूसरे पुरस्कार की राशि को भी उन्होंने अनुसंधान-कार्य में ही लगा दिया। अपने वर्षों के परिश्रम से प्राप्त रेडियम को भी उन्होंने अपनी जन्मभूमि में स्थापित 'रेडियम इंस्टीट्यूट' को दान दे दिया। इस इंस्टीट्यूट के लिए धन जुटाने हेतु उन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा भी करनी पड़ी।

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध के समय मैडम क्यूरी ने घायलों की चिकित्सा का बीड़ा उठाया और फ्रांस के कोने-कोने में घूमकर चिकित्सा-सेवा-कार्य में लगी रहीं। अगले वर्षों में उनका काम था, पति की याद और पीड़ित मानवों की सेवा।

1934 में यह महान महिला उन्हीं विकिरणों की भेंट चढ़ गई, जिनकी खोज में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। डाक्टर अन्त तक उनकी बीमारी का पता न लगा सके थे क्योंकि उसमें इन्फ्लुएंजा, क्षय, एनीमिया आदि कई बीमारियों के लक्षण मौजूद थे। दरअसल वह 'रेडियम-पायज़निंग' थी, जिसमें रेडियोधर्मी विकिरणों द्वारा शरीर धीरे-धीरे क्षयग्रस्त होता जाता है।

मैडम क्यूरी उन महानतम व्यक्तियों में से एक थीं, जो भौतिक सुख-सुविधाओं, प्रसिद्धि और ताम-झाम के जीवन से विरक्त, तटस्थ केवल अपने ध्येय को समर्पित होते हैं और चुपचाप मानवता की सेवा में सक्रिय रहकर ही सुख पाते हैं। संसार के कोने-कोने से लोग उनके पास संदेश, इंटरव्यू, आटोग्राफ लेने आते थे, पर उन्हें यह सब पसन्द न था। वह बचकर निकल जातीं और जाकर अपने काम में जुट जातीं। अपने दुबले-पतले शरीर और सीधे-सादे वेश में वह एक विलक्षण नारी, सफल पत्नी और स्नेहमयी मां थीं। महान वैज्ञानिक का दर्जा तो लोगों ने उन्हें प्रदान किया, स्वयं उनके मन में इसके लिए अभिमान कभी नहीं जागा।

आइरीन जूलियट क्यूरी

(1897-1956)

रसायन में 1935 का नोबल पुरस्कार फ्रेडरिक जूलियट और आइरीन जूलियट क्यूरी को संयुक्त रूप से मिला। आइरीन जूलियट सुप्रसिद्ध क्यूरी-दम्पती पियरे और मेरी क्यूरी की लड़की थीं। फ्रेडरिक जूलियट रेडियम इंस्टीट्यूट में मेरी क्यूरी के असिस्टेंट थे। बाद में आइरीन से विवाह-बन्धन में बंधकर एक हो गए और उन्होंने क्यूरी-दम्पती के रेडियोधर्मी (रेडियो एक्टिव) तत्त्वों की खोज को ही और आगे बढ़ाया। इनकी नई खोज थी : रेडियोधर्मी (रेडियो एक्टिव) मूल तत्त्वों का कृत्रिम निर्माण।

12 दिसम्बर, 1935 को पुरस्कार ग्रहण करते हुए आइरीन जूलियट क्यूरी ने अपना जो नोबल-व्याख्यान दिया, उसमें उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि उनका यह सारा कार्य उनके पति के साथ संयुक्त था; सुविधा के लिए ही इस व्याख्यान को दो भागों में बांटा गया है। उन्होंने कहा, "रेडियोधर्मिता के विज्ञान की खोज को अभी चालीस वर्ष भी नहीं बीते। इस थोड़े समय में ही इसमें जो असाधारण प्रगति हुई, उसका सारांश इस प्रकार है :

" पिछली शताब्दी में रसायनज्ञों ने बानवे रसायनिक तत्त्वों की जानकारी दी थी। इनकी परमाणु संरचना के स्थायित्य के संबंध में कोई संदेह नहीं था। रेडियोधर्मी तत्त्वों की खोज से भौतिकीविदों के सम्मुख नई समस्याएं आईं—रेडियोधर्मिता के जनक सूक्ष्म एवं अद्‌भुत तत्त्व, जिनसें अपरिमित शक्ति छुपी हुई थी; अलफा किरणें, धनात्मक विद्युन्मय हीलियम परमाणु, बीटा किरणें, ऋणात्मक विद्युत् कण, गामा किरणें जो एक्स-किरणों की तरह भेदक हैं आदि। जो मौलिक तत्त्व अभी तक अपरिवर्तनीय माने जाते थे, उनमें परिवर्तन देख रसायनज्ञ भी भौंचक्के रह गए।

"अल्फा या बीटा किरण के प्रत्येक निस्सरण से परमाणुओं में मौलिक परिवर्तन होता रहता है। इस क्रिया में जो ऊर्जा खर्च होती है वह परमाणु के भीतर से ही आती है। जब तक ये परमाणु स्थापित रहते हैं, रेडियोधर्मी (रेडियो एक्टिव) तत्त्वों के रसायनिक गुण अन्य मूल तत्त्वों की तरह ही स्थिर रहते हैं। ये अस्थायी रूप से स्थिर परमाणु स्वतः विघटित हो जाते हैं, कुछ शीघ्रता से, कुछ धीरे-धीरे, किन्तु निर्धारित नियमों के अनुसार इस प्रक्रिया में परिवर्तन करना अभी तक सम्भव नहीं हुआ था। प्रत्येक रेडियोधर्मी तत्त्व की विशेष अर्धायु (हाफ-लाइफ) होती है, जब उसके आधे परमाणु विघटित हो चुके होते हैं। तत्त्व विशेष पर निर्भर यह अर्धायु (हाफ-लाइफ) एक सेकिंड के एक अंश से लेकर लाखों वर्षों तक भी हो सकती है।

"रेडियोधर्मी तत्त्वों की खोज ने पदार्थ के गठन-सम्बन्धी ज्ञान को बहुत आगे बढ़ाया है। इस विषय पर संसार-भर के वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं।

"रेडियोधर्मी तत्त्वों के स्वतः परिवर्तित होने की खोज के बाद लार्ड रदरफोर्ड द्वारा पहले कृत्रिम परिवर्तन लाए गए। पन्द्रह वर्षों बाद उन्होंने नाइट्रोजन या ऐलुमिनियम आदि परमाणुओं पर अल्फा किरणों के प्रहार से धनात्मक हाइड्रोजन नाभिक को पैदा कर दिखाया। यह एक मूल परिवर्तन था। नाभिकीय मूल परिवर्तनों की स्थापना हो गई। उदाहरण के लिए—ऐलुमिनियम परमाणु यदि एक अल्फा कण लेकर एक प्रोटोन (धनात्मक विद्युत् कण) छोड़ देता है तो वह सिलिकान के परमाणु में परिवर्तित हो जाता है। परिवर्तित पदार्थ तौला नहीं जा सकता। इन सूक्ष्म परिवर्तनों की जानकारी रेडियोधर्मिता के अध्ययन से ही मिली।

"ये मूल परिवर्तन वास्तव में रासायनिक क्रियाएं हैं जो परमाणु के आन्तरिक गठन—नाभिकीय क्षेत्र—में होती हैं।" इन क्रियाओं को श्री फ्रेडरिक जूलियट ने साधारण फार्मूलों से समझाया। फिर आइरीन जूलियट ने उन प्रयोगों के बारे में बताया जिनसे उन्हें (दोनों को संयुक्त रूप से) नये रेडियोधर्मी मूल तत्त्वों की उपलब्धि हुई।

"मूलभूत परिवर्तनों-सम्बन्धी प्रयोगों में हमने देखा, फ्लोरीन,



आइरीन जूलियट क्यूरी
1935 में रसायन पर नोबल पुरस्कार

सोडियम तथा ऐलुमिनियम के न्यूट्रान निस्सरण भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। ऐलुमिनियम एक अल्फा-कण लेकर व एक प्रोटोन—धनात्मक विद्युत् कण—छोड़कर सिलिकान के परमाणु में परिवर्तित हो जाता है, पर यदि न्यूट्रान निकाल दिया जाए तो जो नया परमाणु पैदा होता है, इसका रूप अज्ञात है।

"इसी तरह ऐलुमिनियम व बोरोन जब अल्फा किरणों द्वारा प्रभावित किए जाते हैं तो वे प्रोटोन व न्यूट्रान के निस्सरण के अतिरिक्त भी धनात्मक विद्युत् कण छोड़ते हैं।

"1934 के प्रारंभ में हमें ज्ञात हुआ, ऐलुमिनियम को छोड़कर अन्य सभी मूल परिवर्तन आकस्मिक थे, विस्फोट की तरह। परन्तु ऐलुमिनियम अल्फा किरणों के प्रहार के बाद भी कुछ समय तक धनात्मक विद्युत् कण छोड़ता रहता है। इनकी गति तीन मिनट में आधी हो जाती है। यह रेडियोधर्मिता है। इस प्रकार हमें मालूम हुआ कि अन्य मूल तत्त्वों से भी कृत्रिम रूप से रेडियोधर्मी तत्त्व बनाए जा सकते हैं। ये कृत्रिम रेडियोधर्मी तत्त्व प्राकृतिक रेडियोधर्मी तत्त्वों जैसे ही हैं।"

आइरीन जूलियट क्यूरी के इस नोवल-व्याख्यान से हमें बखूबी यह जानकारी मिल जाती है कि अपने माता-पिता की महत्त्वपूर्ण खोज को उन्होंने अपने पति के साथ मिलकर किस प्रकार महत्त्वपूर्ण दिशा में आगे बढ़ाया।

आइरीन क्यूरी का जन्म 12 सितम्बर, 1897 को पेरिस में हुआ। प्रसिद्ध वैज्ञानिक माता-पिता जब वैज्ञानिक प्रयोग में जुटे रहकर ही अपने बच्चों का पालन-पोषण कर रहे थे तो बालिका आइरीन उस प्रतिभा और शोध-वातावरण को विरासत में पाकर सहज ही आत्मसात् कर रही थी। पेरिस में प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर द्वितीय विश्वयुद्ध में आइरीन ने रेडियोग्राफर-नर्स के रूप में काम किया। फिर अल्फा-किरणों पर शोध-कार्य करके उन्होंने 1925 में विज्ञान में डाक्टरेट की डिग्री ली। 1925 में फ्रेडरिक जूलियट मेरी क्यूरी के असिस्टैंट के रूप में उनके द्वारा स्थापित रेडियम इंस्टीट्यूट में काम कर रहे थे। आइरीन साथ रहने के अलावा रुचियों और

कार्यक्षेत्र—हर तरह से उनके संपर्क में थी। 1926 में दोनों विवाह-सूत्र में बंधकर एक कार्यक्षेत्र में समान ध्येय को समर्पित हो गए और महान वैज्ञानिक महिला मेरी क्यूरी के निर्देशन व प्रभाव में उसी खोज को आगे बढ़ाने में जुट गए।

एक शोध छात्रा के रूप में आइरीन जूलियट क्यूरी अल्फा-किरणों पर कार्य कर ही चुकी थीं। पति के साथ मिलकर उन्होंने अपने इस अध्ययन के माध्यम से ही रेडियोधर्मिता का अध्ययन शुरू किया। प्राकृतिक व कृत्रिम रेडियोधर्मिता, मूल तत्त्वों के परिवर्तन और नाभिकीय भौतिक विज्ञान पर उन्होंने विशेष रूप से कार्य किया। कृत्रिम रेडियोधर्मी तत्त्वों के उत्पादन पर ही 1935 में उन्हें पति के साथ रसायन का नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। पुरस्कार दोनों को आधा-आधा बांटकर मिला।

पुरस्कार-प्राप्ति के बाद 1938 में न्यूट्रान्स के भारी तत्त्वों के प्रभाव से यूरेनियम के विखंडन की दिशा में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'पेरिस फैकल्टी आफ साइंस' में 1932 से ही उन्हें व्याख्याता का पद मिल गया था। 1937 में वे प्रोफेसर हो गईं। फिर 1946 में रेडियम इंस्टीट्यूट की डाइरेक्टर बनीं। छह वर्ष तक राज्य के परमाणु ऊर्जा आयोग की कमिश्नर के रूप में उन्होंने फ्रांस के परमाणु ऊर्जा संग्रह में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आरसे स्थित नाभिकीय भौतिकी के अध्ययन-केन्द्र की उन्होंने ही स्थापना की। इस केन्द्र में भारी शक्ति की सिन्क्रो साइक्लोट्रान थी, जिसकी सारी योजना आइरीन जूलियट ने ही बनाई थी। 1956 में पेरिस में आइरीन का देहान्त हो गया था। उनके बाद उनके पति फ्रेडरिक जूलियट ने आरसे के इस केन्द्र को आगे बढ़ाया।

विज्ञान के अतिरिक्त महिलाओं की सामाजिक व बौद्धिक उन्नति के अन्य कार्यों में भी आइरीन जूलियट क्यूरी की गहरी रुचि थी। विदेशी ऐकेडेमियों और कई वैज्ञानिक संगठनों की सदस्यता के साथ 'वर्ल्ड पीस काउंसिल' तथा अनेक महिला संस्थाओं में भी वे सक्रिय थीं। उन्हें कई सम्मान और अनेक यूनिवर्सिटियों से आनरेरी डाक्टरेट की डिग्रियां प्रदान की गईं।

गर्टी थेरेसा कोरी

(1896—1957)

विज्ञान में शोध करनेवाले दम्पतियों को तीन बार संयुक्त रूप से पुरस्कार दिया गया। गर्टी थेरेसा कोरी उनमें से एक हैं। 1947 में उन्हें शरीर-विज्ञान और चिकित्सा के नोबल पुरस्कार का अर्द्धांश पति कार्ल कोरी के साथ आधा बांटकर मिला। दूसरा आधा भाग अर्जेंटाइना के शरीर-विज्ञानी डा० बर्नार्डो ए० हाउसे को दिया गया था। कोरी दम्पती जन्मत: आस्ट्रियाई थे, किन्तु प्राहा के मेडिकल स्कूल से स्नातक होने के बाद उन्होंने स्वेच्छा से अमेरिकी नागरिकता ग्रहण कर ली थी।

गर्टी थेरेसा का जन्म प्राहा में 15 अगस्त, 1896 को हुआ। उस समय प्राहा नगर आस्ट्रिया में था। गर्टी के पिता चीनी साफ करने-वाले कई कारखानों के प्रबन्धक थे। समृद्ध वर्ग की अधिकांश लड़कियों की तरह गर्टी थेरेसा रैडनित्ज़ (विवोहोपरान्त कोरी) की प्रारम्भिक शिक्षा भी घर पर हुई। दस वर्ष की आयु में उसे एक अच्छे पब्लिक स्कूल में दाखिल किया गया, जहां बड़े घरों की लड़कियों के सामाजिक परिवेश के अनुरूप उनके जीवन को ढाला जाता था और उनके सांस्कृतिक गुणों का विकास किया जाता था। चूंकि ऐसे स्कूलों का उद्देश्य उच्चाधिकारियों के लिए सफल पत्नियों का निर्माण करना ही होता है, उस स्कूल में गणित और विज्ञान के विषयों को पढ़ाने की कोई व्यवस्था न थी। प्रारम्भ में गर्टी रैडनित्ज़ को भी इन विषयों की कमी खली नहीं। वे स्कूल के सामान्य पाठ्यक्रम में खूब रुचि लेती थीं और हर बात में आगे रहती थीं। शिक्षकों ने अनुमान लगा लिया कि लड़की में प्रतिभा और जन्मजात सामाजिक गुण हैं, जिन्हें विक-सित करने पर वह जीवन में कुछ बन सकती है। बौद्धिकता के साथ शालीनता, उदारता और मानवीय संवेदना के गुण उनके छात्र-जीवन



गर्टी थेरेसा कोरी
1947 में चिकित्सा पर पुरस्कार

में ही उजागर हो गए थे। आगे चलकर जीवन-भर वैज्ञानिक शोध जैसे शुष्क कार्य में लगे रहकर भी उनके व्यक्तित्व के ये गुण धूमिल नहीं हुए और वे सफल वैज्ञानिक के साथ सफल नारी, मां, पत्नी व गृहिणी की भूमिकाएं भी साथ-साथ निभा सकीं।

सन् 1912 में स्नातक होने के बाद उन्होंने डाक्टर बनने का संकल्प ले मेडिकल स्कूल में दाखिले के लिए प्रयत्न किया। पूछताछ करने पर पता चला कि मेडिकल स्कूल में दाखिला पाने के लिए उन्हें आठ वर्षों तक लैटिन का अध्ययन करना पड़ेगा, क्योंकि तब तक लैटिन वे नहीं जानती थीं। इसके अलावा उन्हें पांच साल तक पढ़ाए जाने वाले गणित और भौतिकी व रसायन का भी अध्ययन करना होगा। यह सारी पढ़ाई जिमनेज़ियम में हो सकती थी जहां लड़कियों की संख्या नगण्य थी और जहां भेजने के लिए माता-पिता राज़ी न थे। उन्होंने गर्टी को समझाया, चूंकि उनकी स्नातक-पूर्व शिक्षा मेडिकल के अनुरूप नहीं हुई है, वे इस लाइन में जाने का विचार छोड़ दें। स्वयं उन्हें भी एकबारगी लगा कि इस तरह तो डाक्टर बनने तक उनके बाल सफेद हो जाएंगे और शायद गर्दन भी हिलने लगेगी। किन्तु संकल्प के धनी व्यक्ति धुन के भी धनी होते हैं। एक बार कोई निश्चय कर लेने के बाद पीछे हटना उनके लिए सम्भव ही नहीं होता। निर्णय ले लिया गया कि गर्मी की छुट्टियों में पहले सैर की जाएगी, स्नातक परीक्षा की थकन मिटाकर व नई ताज़गी और शक्ति जुटाकर फिर मेडिकल स्कूल में दाखिले के लिए अनिवार्य योग्यता हासिल की जाएगी।

किन्तु छुट्टियां-भर भी सैर नहीं की गई। टाइराल पर छुट्टियां मनाते हुए उनका परिचय एक ऐसे व्यक्ति से हुआ जो टेत्शेन में 'रायल जिमनेज़ियम' नामक एक स्कूल में शिक्षक था। गर्टी ने उसके सामने अपनी समस्या और भावी योजना रखी। वह छुट्टियों में ही उन्हें लैटिन सिखाने के लिए राज़ी हो गया। इस तरह छुट्टियों में जी-भर मौज उड़ाने आई गर्टी अन्य सैलानियों से अलग हो अपना अधिकांश समय कमरे में बन्द हो बिताने लगी। छुट्टियां खत्म होने तक उन्होंने इतनी लैटिन सीख ली थी जो सामान्यत: तीन वर्ष में सीखी जाती

है। उन्होंने फैसला किया कि आगे भी यही रफ्तार रखी जाएगी और शेष पांच वर्षों का कार्य भी जल्दी समाप्त कर लिया जाएगा।

लौटकर उसी वर्ष वे टेत्शेन के 'रायल जिमनेज़ियम' में दाखिल हो गईं। दाखिले के समय उनसे शर्त रखी गई कि काम के योग्य सिद्ध होने पर ही उन्हें वहां अपना अध्ययन जारी रखने दिया जाएगा। पर गर्टी रैडनित्ज़ ने एक वर्ष में ही असम्भव को सम्भव कर दिखाया। पांच वर्षों का कार्य एक वर्ष में, जिसमें गणित का अध्ययन भी शामिल था। जो भी देखता, हैरान रह जाता। पर उनकी बौद्धिक क्षमता और आत्म-नियन्त्रण की शक्ति अद्भुत थी। लक्ष्य ही रखकर चली थीं कि जल्दी से जल्दी मेडिकल स्कूल में प्रवेश के लायक योग्यता हासिल कर लेनी हैं। उन्होंने परीक्षाएं दीं और सफल होती गईं। 'मेरे जीवन की कठिनतम परीक्षाएं' कहकर इन परीक्षाओं को वे जीवन-भर याद करती रहीं।

सोलह वर्ष की आयु में वे स्नातक बनी थीं। अठारहवीं वर्षगांठ के शीघ्र बाद वे प्राहा विश्वविद्यालय के मेडिकल स्कूल में प्रवेश पाने में सफल हो गईं। प्राहा विश्वविद्यालय उस समय 'चार्ल्स फर्डिनांड' नाम से पुकारा जाता था। उसके दो भाग थे—चेक और जर्मन। गर्टी रैडनित्ज़ ने जर्मन शाखा के मेडिकल स्कूल में अपना नाम लिखाया। उसी वर्ष उस स्कूल में कार्ल कोरी नाम के एक नीली आंखों वाले लम्बे सुन्दर नवयुवक ने भी दाखिला लिया था। कुछ दिनों बाद दोनों में भेंट हुई और वे प्रयोगशाला में जीव-रसायन पर साथ-साथ कार्य करने लगे। प्रतिरक्षा-विज्ञान पर किए गए अपने संयुक्त अध्ययन के परिणामों का प्रकाशन देखकर वे पुलक उठे। उसपर दोनों का नाम साथ-साथ छपा था। तभी उन्हें पहली बार महसूस हुआ कि प्रयोगशाला के भीतर ही नहीं, बाहर भी वे एक-दूसरे को पसन्द करते हैं।

दोनों साथ-साथ काम करके आनन्दित होते। साथ-साथ तैरने, स्केटिंग करने, आल्प्स पर्वत पर चढ़ने में उन्हें विचित्र सुख प्राप्त होता। एक-दूसरे की प्रेरणा से परीक्षा में आगे निकलने की होड़ करते कब अध्ययन-काल बीत गया उन्हें पता भी नहीं चला। सन् 1920 में उन्होंने एम० डी० की डिग्री ली और उसी वर्ष गर्मियों में विवाह-

सूत्र में बंध गए। गर्टी कोरी ने विवाह के बाद दो वर्ष तक बच्चों के एक अस्पताल में कार्य किया, फिर पति के साथ अमेरिका के लिए रवाना हो गईं।

जब वे मेडिकल स्कूल में पढ़ रही थीं तभी 1918 में प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हो चुका था। इस महायुद्ध में आस्ट्रिया पूरी तरह तबाह हो चुका था। प्राहा विश्वविद्यालय अब आस्ट्रिया में नहीं रहा था। प्राहा अब नव निर्मित देश चेकोस्लोवाकिया की राजधानी बन गया था। उन दिनों अस्पतालों में डाक्टरों की मांग तो काफी थी, पर इन दोनों महत्त्वाकांक्षी युवा डाक्टरों को वहां अपना भविष्य उज्ज्वल नहीं दिखाई दिया। फिर वे चिकित्सा करने के बजाय जीव-रसायन पर अनुसंधान करना चाहते थे। छात्र-जीवन में ही दोनों ने इस विषय पर काफी अनुसंधान कर लिया था। पर उससे सन्तुष्ट न हो अपनी इस रुचि को वे आगे और अनुसंधान में विकसित करना चाहते थे। शीघ्र ही डा० कार्ल कोरी को वियना में इस तरह के अनुसंधान का अवसर भी मिल गया। डा० गर्टी कोरी भी उसी नगर में बच्चों के अस्पताल में काम करने लगीं। अस्पताल में कार्य करते हुए भी वहां उपलब्ध साधनों से उन्होंने अपने शोध-कार्य को कुछ आगे बढ़ाया। थायरायड ग्रंथि और प्लीहा के अध्ययन पर आधारित उनके कुछ लेख एक वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित हुए। डा० कार्ल कोरी तो अनु-संधान में ही नियुक्त थे, पर दोनों ने अनुभव किया कि जिस प्रकार का अनुसंधान-कार्य वे करना चाहते हैं उसकी सुविधाएं उन्हें अमेरिका में ही प्राप्त हो सकती हैं। और वे अमेरिका जाने के प्रयत्न करने लगे।

दो वर्ष बाद बफैलो (न्यूयार्क) के दुर्दम्य रोगों के शोध-संस्थान से डा० कार्ल कोरी को जीव-रसायनज्ञ का नियुक्ति-पत्र मिला तो पति-पत्नी दोनों बहुत प्रसन्न हुए। डा० कार्ल कोरी पहले अकेले ही अमे-रिका गए। फिर कुछ समय बाद उन्होंने अपनी पत्नी की नियुक्ति भी इसी संस्थान में करवा ली। डा० गर्टी कोरी सहायक विकृति-विज्ञानी बनकर आईं। फिर शीघ्र ही सहायक जीव-रसायनज्ञ हो गईं। इस प्रकार दोनों को फिर साथ-साथ काम करने का अवसर मिल

गया। तब से उनके कुछ ही लेख अलग-अलग प्रकाशित हुए। अधिकांश शोध-परिणामों पर दोनों का नाम साथ-साथ प्रकाशित होता। यद्यपि कई पुरस्कार और सम्मान दोनों को स्वतन्त्र रूप से भी मिले, पर कुछ पुरस्कारों पर भी नाम संयुक्त था। फिर 1947 में सर्वोच्च नोबल पुरस्कार संयुक्त रूप से लेकर तो उन्होंने इतिहास में भी अपना नाम साथ-साथ जोड़ लिया।

दोनों की ही रुचि शरीर के रोगों की अपेक्षा स्वस्थ शरीर के क्रिया-संचालन में विशेष थी। उनकी प्रारम्भिक जीव रासायनिक शोध मानव-शरीर की असामान्य वृद्धि के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित थी। चूंकि शरीर की सामान्य, असामान्य और दोनों तरह की वृद्धि अधिकतर हमारे भोजन पर निर्भर है इसलिए कोरी-दम्पती का विशेष ध्यान पाचन की उस रासायनिक प्रक्रिया की ओर आकृष्ट हुआ, जिससे गुज़रकर भोजन-तत्त्व शरीर-निर्माता तत्त्वों में परिवर्तित होते हैं। शुरू में उन्होंने अर्बुदों के उपापचयन का अध्ययन किया। जब उनके निष्कर्षों में सामान्य और असामान्य दोनों तरह की वृद्धि पर काम करनेवाले सभी वैज्ञानिकों ने रुचि ली, कोरी-दम्पती ने इन प्रक्रियाओं को पूरी तरह समझने के लिए अपने इस अध्ययन को और आगे बढ़ाया।

इंसुलिन का आविष्कार तब तक हो चुका था। इंसुलिन हार्मोन वर्ग का एक प्रोटीन है जो सामान्य शरीर में उत्पन्न होता है और पाचन-प्रक्रिया में हमारे भोजन के शर्करा और श्वेतसारों (कार्बोहाइड्रेट्स) के उपयोग को नियंत्रित करता है। इंसुलिन के अविष्कार के बाद डाक्टरों के लिए मधुमेह पर नियंत्रण पाना आसान हो गया। उपापचयन की रासायनिक प्रक्रियाओं पर अध्ययन करने के लिए कोरी-दम्पती को इंसुलिन से बहुत सहायता मिली। मानव-शरीर का सम्पूर्ण जीव-रासायनिक अध्ययन करने में चिकित्सा और शरीर-क्रिया-विज्ञान की पूर्व उपलब्धियों की पृष्ठभूमि भी उनके काफी काम आई। असाध्य माने जाने वाले या दुर्दम्य रोगों के शोध-संस्थान ने उन्हें अनुसंधान-कार्य के लिए पूरी सुविधाएं और पूरी स्वतन्त्रता प्रदान की। बफैलो के इस संस्थान में समस्त सुविधाएं उपलब्ध भी थीं। गर्टी

कोरी ने इन अवसरों और सुविधाओं के लिए बफैलो संस्थान और अमेरिकी सरकार के प्रति कई बार कृतज्ञता-ज्ञापन किया था।

कोरी-दम्पती ने सफेद चूहों को एक निश्चित मात्रा में शर्करा खिलाई। फिर उनमें से कुछ चूहों को उन्होंने इंसुलिन दी, कुछ को नहीं। इन चूहों को श्वसन-कक्षों में रख दिया गया कि शर्करा के आक्सीकरण की मात्रा पता चल सके। निर्धारित समय पर फिर कार्बोहाइड्रेट के लिए उनके शरीर का निरीक्षण किया गया। ऐसे कई प्रयोगों से कोरी-दम्पती इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अवशोषित शर्करा का लगभग आधा भाग मधुजन (ग्लाइकोजन) में परिवर्तित होकर यकृत और मांसपेशियों में जमा हो जाता है और कुछ चर्बी के रूप में परिवर्तित होकर इसी रूप में जमा हो जाता है। शेष आक्सीकृत होकर (जलकर) कार्बन डाईआक्साइड तथा पानी बन जाता है। शरीर में शर्करा के उपयोग से सम्बन्धित रासायनिक प्रक्रियाओं के अनुसंधान में यह एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष था। आज इसीलिए चर्बी घटाने के लिए डाक्टर कार्बोहाइड्रेट (शर्करा और श्वेतसारों) का कम उपयोग करने की सलाह देते हैं।

नियमित खुराक पर रखे गए जानवरों के शरीरों का अध्ययन कर वे इस नतीजे पर पहुंचे कि यकृत में जमा शर्करा के प्रभाव को तो इंसुलिन कम करता है पर शर्करा के सामान्य उपयोग को वैसे बढ़ा देता है। यह निष्कर्ष मधुमेह के इलाज में डाक्टरों के लिए बड़ा लाभ-दायक सिद्ध हुआ। अगले प्रयोगों में कोरी-दम्पती ने शर्करा के विभिन्न रूपों का उपयोग किया और इंसुलिन के अलावा दूसरे हार्मोनों को भी जानवरों के शरीर में पहुंचा कर देखा। इन प्रयोगों से भी शरीर की भीतरी रासायनिक प्रक्रियाओं के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली। उन्होंने देखा कि पेशियों में जमा मधुजन (ग्लाइकोजन) से दुग्ध-अम्ल (लैक्टिक एसिड) उत्पन्न होता है जो रक्त-प्रवाह के साथ यकृत में पहुंचता है। यह दुग्ध-अम्ल वहां यकृत-मधुजन में परिवर्तित हो जाता है और रक्त ग्लूकोज़ को जन्म देता है। यह बाद में फिर पेशियों के उसी मधुजन में बदल जाता है। जिससे यह प्रक्रिया शुरू हुई थी। इस सिद्धान्त ने शरीर के पाचन-सम्बन्धी विज्ञान की जानकारी

को काफी आगे बढ़ाया । कोरी-दम्पती द्वारा प्रतिपादित हमारे शरीर की यह सतत आवर्ती प्रक्रिया 'कोरी चक्र' के नाम से प्रचलित है ।

इन सफलताओं के बाद सेंट लुई के वाशिंगटन विश्वविद्यालय ने डा० कार्ल कोरी को प्रोफेसर तथा गर्टी कोरी को फैलो व सहयोगी शोध अधिकारी के पद पर अपने यहां आमंत्रित किया । कोरी दम्पती ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया । बाद में गर्टी कोरी भी जीव-रसायन विभाग में सहयोगी प्रोफेसर हो गई । नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के कुछ दिन पूर्व उनकी नियुक्ति प्रोफेसर के पद पर कर दी गई थी । किन्तु अध्यापन कभी भी उनकी रुचि के अधिक निकट नहीं रहा । वे तो अपना जीवन विज्ञान के अनुसंधान-पक्ष को समर्पित कर चुकी थीं । सेंट लुई में यद्यपि प्रारम्भ में उनका पद पति डा० कार्ल कोरी से नीचा था पर उन्हें प्रयोगशाला में पति के साथ बराबरी के स्तर पर तथा स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की पूरी छूट थी । वे मिलकर शोध-विषय चुनते और काम शुरू कर देते । कार्य के दौरान उठी समस्याओं पर परस्पर विचार-विमर्श करते, उन्हें सुलझाने के तरीके सोचते, फिर परस्पर कार्य का बंटवारा कर लेते । कार्यक्षेत्र में उनके छात्र और सहयोगी अलग-अलग थे । बीच-बीच में दोनों यूनिटों के निष्कर्षों का मिलान कर लिया जाता था ।

डा० कार्ल कोरी अपना कुछ समय अध्यापन में, कुछ प्रशासन में और शेष अनुसंधान में देते थे तो डा० गर्टी कोरी अपना कुछ समय अध्यापन में, कुछ शोध-कार्य में तथा शेष समय घर-गृहस्थी की सार-संभाल में देती थीं । विवाह के चौदह वर्ष बाद उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया । इस बीच अनुसंधान से उन्हें जितनी भी फुर्सत मिलती थी उस समय को अपने घर व बगीचे की सार-संभाल में तथा संगीत और चित्रकारी में खर्च कर वे अपने कार्यकारी दाम्पत्य को रसमय घरेलू दाम्पत्य में डुबोकर तरोताजा बनाए रखती थीं । बेटे के जन्म के बाद भी उनके कार्यकारी जीवन में कोई व्याघात नहीं पड़ा । गर्भावस्था में और अपने नन्हे टामी के शैशव-काल में भी उन्होंने अपने समय का ऐसा विभाजन रखा कि दोनों कार्य साथ-साथ चल सकें । पति ने भी बराबर ध्यान रखा कि पत्नी का अनुसंधान-कार्य

अबाध गति से चलता रहे और उसके भीतर की मां को पूरा संतोष मिले।

'कोरी चक्र' के अनुसार कोरी-दम्पती यह सिद्ध कर चुके थे कि शरीर का मधुजन कुछ सतत रासायनिक परिवर्तनों से गुज़रता रहता है। इनमें से कुछ परिवर्तन प्रकिण्व (एंजाइम) नामक प्रोटीन से होते हैं। ये प्रोटीन भी हार्मोनों की तरह ही शरीर में उत्पन्न होते हैं और रासायनिक प्रक्रियाओं के दौरान शरीर के काम आते हैं। इन प्रक्रियाओं में मधुजन में होनेवाले परिवर्तनों को समझने के लिए उन्होंने एंजाइम तंत्र पर काम करना शुरू किया। इन अनुसंधानों के साथ ही मौलिक आविष्कारों की एक श्रृंखला जुड़ गई जिन्होंने कोरी-दम्पती का भविष्य चमका दिया।

तब तक इन एंजाइमों के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी थी। आज भी अधिक नहीं है। यह माना जाता है कि जैव-रासायनिक परिवर्तनों के लिए एंजाइम एक उत्प्रेरक तत्त्व है। इसके अलावा एक विशेष प्रकार का एंजाइम सामान्यतया एक विशेष पदार्थ को ही प्रभावित करता है। एंजाइमों या प्रकिण्वों की संरचना बड़ी जटिल होती है। इसी तरह उनपर काम करना भी।

उनके द्वारा तैयार किया गया शर्करा फास्फेट कोरी एस्टर के नाम से विख्यात हुआ। उन्होंने उन प्रकिण्वों (एंजाइमों) को खोज निकाला जो 'कोरी चक्र' की उपापचयन प्रक्रियाओं के दौरान केवल मधुजन को प्रभावित करते हैं। साथ ही उन्होंने उन उत्प्रेरकों को भी पहचान लिया जिनके कारण मधुजन की रासायनिक रचना में परिवर्तन होता है। और अन्ततः उन्होंने एक अत्यन्त कठिन काम कर दिखाया—वह था मधुजन के अणु की रचना का पता लगाना। मधुजन के इकट्ठा होने से उत्पन्न चार रोगों का भी पता लगा लिया गया जो चारों एक-दूसरे से भिन्न थे। आगे चलकर 1951 में कार्ल और गर्टी कोरी ने अपने इस सारे शोध-कार्य की प्रगति-रिपोर्ट हार्वे सोसाइटी के सम्मुख एक व्याख्यान के रूप में रखी। इसके पूर्व 1947 में ही कार्ल और गर्टी कोरी को 'मधुजन के उत्प्रेरण और परिवर्तन' सम्बन्धी उनके अनुसंधान पर शरीर-विज्ञान और चिकित्सा के नोबल पुरस्कार

का आधा भाग प्रदान कर दिया गया। पुरस्कार का दूसरा आधा भाग अर्जेण्टाइना के शरीर-विज्ञानी डा० बर्नार्डो ए० हाउसे को मिला जिन्होंने शरीर द्वारा शर्करा के उपयोग पर पीयूष ग्रन्थि के स्राव का प्रभाव प्रदर्शित किया था।

इसके बाद सेंट लुई स्थित कोरी-दम्पती की प्रयोगशाला एक ऐसा केन्द्र बन गई थी जहां कार्बोहाइड्रेटों के उपापचयन में रुचि रखने वाले सभी अनुसंधानकर्ता दूर-दूर से खिंचे चले आते थे। अनेकों प्रथम श्रेणी के वैज्ञानिकों ने इस विषय पर आगे अनुसंधान किया और इस शोध-केन्द्र से बीसियों शोध-लेख प्रकाशित हुए। कुछ डाक्टरों का मत है कि वृक्क, यकृत, दिल और रक्तवाहिनी के रोग प्रायः कार्बोहाइड्रेट और चर्बी वाले भोजन की अधिक मात्रा लेने से हो जाते हैं। ऐसा होने पर शरीर इस अतिरिक्त मात्रा का समुचित उपयोग नहीं कर पाता और शरीर उन दूसरे भोज्य तत्त्वों से भी वंचित रह जाता है जो कि उपापचयन के लिए अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ पोषक तत्त्व होते हैं। इस दिशा में अनुसंधान का यह सिलसिला जारी है। आगे चलकर सम्भव है मध्य व परवर्ती आयु में होने वाले ऐसे रोगों का इलाज अधिक सफलतापूर्वक किया जा सके।

गर्टी कोरी अपने पति के साथ नोबल पुरस्कार लेने स्टाकहोम नहीं जा सकीं। वे पुरस्कार प्राप्त करने से पूर्व ही एक ऐसे रोग से ग्रस्त हो चुकी थीं जिसका समुचित इलाज तब तक विज्ञान के पास नहीं था। पर इसके बाद रोग से लड़ते हुए भी वे दस वर्ष तक जीवित रहीं और निरन्तर काम में जुटी रहीं। प्रयोगशाला में जाने से पहले और प्रयोगशाला से लौटने के बाद कार्ल के साथ टेनिस खेलने, स्केटिंग करने या पहाड़ पर चढ़ने की बातें अब समाप्त हो चुकी थीं। बीमार गर्टी अब अपने बगीचे में फूलों की देखभाल तक सीमित रह गई थीं। बीमारी के कारण अब वे बहुत कम घर से बाहर निकलतीं। उन्होंने अपने डाइनिंग रूम और रहने के कमरों की बिना पर्दे वाली खिड़कियों के नीचे चौड़े तख्ते लगवाकर वहीं बहुत-से पौधे लगवा लिए थे कि कमरे में ही बगीचे की सैर का आनन्द मिल जाए। धीरे-धीरे कुछ ठीक होने पर वे प्रयोगशाला जाने लगीं और आवश्यक

मीटिंगों में भी। पर अध्ययन उनकी बीमारी में भी निरन्तर चलता रहा। वे विद्या-व्यसनी थीं। उनकी रुचि भी विज्ञान तक ही सीमित नहीं थी। इतिहास, जीवनियां, समाज-विज्ञान सभी कुछ पढ़ती थीं और चर्चित विषयों परअ धुनातन जानकारी रखती थीं। कला और कलात्मक सज्जा से भी उन्हें प्रेम था। अपनी इन विस्तृत रुचियों के कारण उनके मित्रों की संख्या भी काफी थी। उनका अन्तिम पत्र, जो उनकी मृत्यु के कारण अधूरा रह गया था, एक सहेली के नाम था, जिसके पति की उसमें स्वास्थ्य-कामना की गई थी।

अंतिम दिनों में बीमारी के बीच गर्टी कोरी ने जो 'दिस आई बिलीव' (मेरा यह विश्वास है) नामक पुस्तिका लिखी, उससे उनकी बौद्धिक ईमानदारी, सत्यवादिता, उदारता, साहस आदि गुणों में निष्ठा की झलक मिलती है। "जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में मैं इन गुणों में से कभी एक को व कभी दूसरे को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देती रही हूं। पर जवानी के मुकाबले में अब इनका महत्त्व मेरी दृष्टि में अधिक मुखरित हो चला है—विशेश रूप से उदारता का। उदारता ही मनुष्य को ऊंचा उठा सकती है।" गर्टी के मित्र जानते थे कि उनमें उदारता की और बौद्धिक ईमानदारी की जीवन-भर कमी न थी, पर अपनी रुग्णावस्था में वे अत्यधिक उदार हो उठी थीं। ज्यों-ज्यों उनकी शक्ति घट रही थी, त्यों-त्यों जीवन का एक-एक कण उनके लिए मूल्यवान हो उठा था। सभीकी समस्याओं को वे धैर्य व सहानुभूति-पूर्वक सुनतीं और हर सम्भव सहायता करतीं। वे बाहर तो सम्मानित थीं ही, अपने स्वजनों, परिचितों और मित्रों में भी कम सम्मानित न थीं। ऐसा सौभाग्य बहुत कम लोगों को मिल पाता है।

गर्टी कोरी को जितने सम्मानसूचक पुरस्कार मिले, उतने बहुत कम महिला-वैज्ञानिकों मिले होंगे। सन् 1947 में वे राष्ट्रीय विज्ञान ऐकेडेमी की सदस्या मनोनीत की गई। नोबल पुरस्कार के एक वर्ष पूर्व उन्हें अपने पति के साथ संयुक्त रूप से विज्ञान का 'मिडवेस्ट अवार्ड' दिया गया था। नोबल पुरस्कार के बाद उन्हें द्वितीय शर्करा-अनुसंधान पुरस्कार प्रदान किया गया। 1947 में ही पति के साथ संयुक्त रूप से उन्हें अंतस्रावी विज्ञान में 'स्क्विब अवार्ड' मिला। फिर

1948 में केवल महिलाओं को मिलने वाला 'गारवन स्वर्णपदक'। 1950 में उन्हें मेडिकल कालेज संघ की ओर से 'बोर्डन अवार्ड' दिया गया। इस वर्ष राष्ट्रपति ट्रूमैन ने उनकी नियुक्ति नव निर्मित राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के बोर्ड की सदस्या के रूप में कर दी। अपनी मृत्यु तक वे इस पद पर रहीं। बीच-बीच में कभी दोनों को एक साथ, तो कभी केवल उन्हें बोस्टन विश्वविद्यालय, कोलम्बिया, येल और रोचेस्टर विश्वविद्यालय, स्मिथ कालेज आदि से आनरेरी डाक्टरेट की उपाधियां प्रदान की गईं। 'अमेरिकन सोसाइटी आफ बायोलाजिकल केमिस्ट्स' व 'अमेरिकन केमिकल सोसाइटी' की सदस्या भी वे चुनी गईं। 'जर्नल आफ बायोलाजिकल केमिस्ट्री' में तथा अन्य अनेक वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में वे निरन्तर लिखती रहीं। उनके लिखे वैज्ञानिक लेखों की संख्या 200 के लगभग है।

26 अक्तूबर, 1957 को उनका देहान्त हो गया। पति कार्ल कोरी के साथ उनके चालीस वर्षीय साहचर्य और सहयोगी अनुसंधान-कार्य की इस क्षति के अवसर पर दुःख से विदग्ध कार्ल कोरी ने कहा, "वे एक ऐसी महिला थीं जो तथ्य और कल्पना में भेद करने में कभी गलती नहीं करती थीं।" वैज्ञानिक पति की वैज्ञानिक पत्नी को एक वैज्ञानिक श्रद्धांजलि !

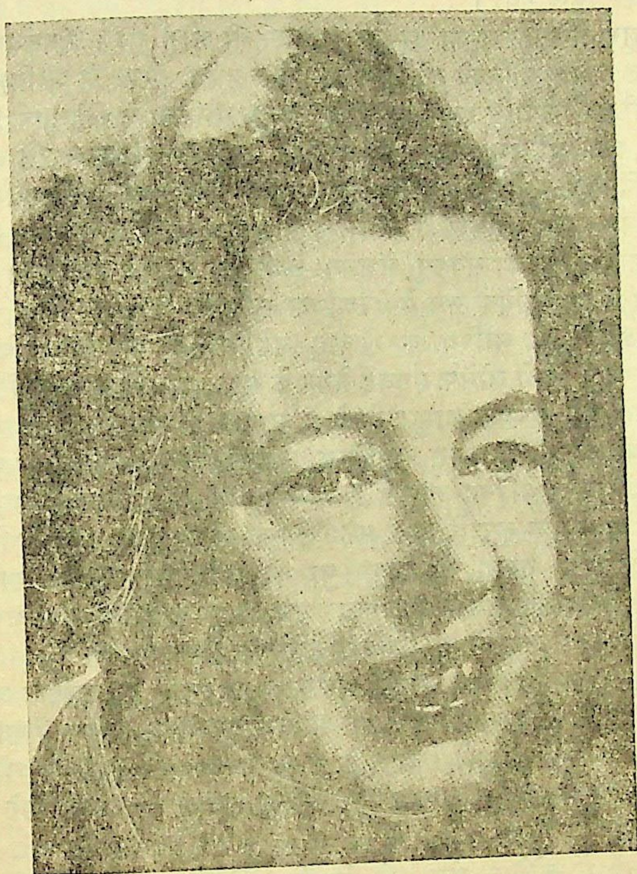
मारिया ज्योपर्ट मेयर

(1906-1972)

आइन्स्टाइन के वाद परमाणु की खोज का काम तेज़ी से आगे बढ़ा। इन खोजों का प्रभाव केवल रसायन पर ही नहीं पड़ा, भौतिकी में भी ज्ञान के नये रास्ते खुल गए। भौतिकी में जिन वैज्ञानिकों ने इस अत्यन्त जटिल और सूक्ष्म शाखा को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया, उनमें एक मुख्य नाम है, 1963 में नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाली नारी मारिया ज्योपर्ट मेयर।

मारिया ज्योपर्ट विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में नोबल पुरस्कार पाने वाली प्रथम अमेरिकी महिला थीं। उन्होंने यह पुरस्कार भौतिकी के लिए जे० एच० डी० जेंसन के साथ संयुक्त रूप से प्राप्त किया। दोनों ने परमाणु की संरचना के सम्वन्ध में एक नई खोज करके विज्ञान-जगत् को नई रोशनी दी। भौतिकी का आधा पुरस्कार इन दोनों में वंटा था। आधा प्रिंसटन यूनिवर्सिटी के डा० यूजीन पाल विगनर को मिला।

मारिया के जीवन का एक बहुत बड़ा भाग विज्ञान की खोजों को समर्पित रहा। उनका जन्म 28 जून, सन् 1906 को उत्तर सैलांसिया (पोलैंड—तब जर्मनी का भाग) में हुआ था। फ्रेडरिक व मारिया वूल्फ ज्योपर्ट की इस इकलौती सन्तान को विद्वत्ता विरासत में मिली थी। मारिया के पूर्वज पिछली छह पीढ़ियों से जर्मन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। पैतृक विद्वत्ता को उसने अपनी प्रतिभा, जिज्ञासा, परिश्रम के बल पर खूब तराशा। प्रारंभिक शिक्षा पाई पब्लिक और प्राइवेट स्कूलों में। स्कूली शिक्षा के अंतिम पड़ाव में मारिया को कुछ मुश्किलों का सामना करना पड़ा। यूनिवर्सिटी की प्रवेश परीक्षा के लिए लड़कियों को तैयार करने वाला नगर का एकमात्र स्कूल बन्द हो गया। किन्तु साहसी मारिया ने हिम्मत नहीं हारी और प्राइवेट



मरिया ज्योपर्ट मेयर
1963 में भौतिकी पर नोबल पुरस्कार

तैयारी शुरू कर दी। 1924 में उसे गोटिंजेन विश्वविद्यालय, बर्लिन, में प्रवेश मिल गया।

शुरू में मारिया का झुकाव गणित की ओर था। मैक्सबर्न के प्रभाव से वह भौतिकी की ओर आकर्षित हुई। 1930 में भौतिकी में डाक्टरेट की उपाधि ग्रहण करने का अवसर मारिया के लिए एक दिलचस्प और अविस्मरणीय अनुभव था। डाक्टरेट प्रदान करने वाली समिति में तीन नोबल पुरस्कार-विजेता थे—जेम्स फ्रैंक, एडोल्फ विंडन तथा मैक्सबर्न। भविष्य में नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए जमकर काम करने का संकल्प संभवतः तभी मन में पैठ गया था। इस घटना ने स्वाभाविक रूप से प्रेरणा का काम तो किया ही।

1930 में ही मारिया का विवाह अमेरिका के राकफैलर विश्वविद्यालय के फैलो जोसेफ एडवर्ड मेयर के साथ, जो उस समय गोटिंजेन में जेम्स फ्रैंक के साथ काम कर रहे थे, सम्पन्न हो गया। कुछ ही समय बाद श्री मेयर की जोन्स हापकिन्स यूनिवर्सिटी में नियुक्ति हो जाने पर मारिया अमेरिका आ गईं। जोन्स हापकिन्स में आकर उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया। 1930 में एक प्रोफेसर की पत्नी के लिए फैकल्टी मेम्बर बनना कठिन था। पर भौतिकी में रुचि होने के कारण वे उसी विश्वविद्यालय में वालंटियर एसोसिएट के रूप में कार्य करती रहीं। 1932 में उन्होंने अमेरिकी नागरिकता ग्रहण कर ली।

हापकिन्स विश्वविद्यालय में प्रोफेसर कार्ल एच० हर्ट्जफील्ड और अपने पति के सहयोग से मारिया ने भौतिक-रसायनज्ञ के रूप में काफी दक्षता प्राप्त कर ली थी। दोनों के साथ मिलकर उन्होंने कई शोध-पत्र प्रकाशित कराए। साथ ही, कार्बनिक अणुओं के रंग के बारे में कुछ शोधकार्य किया।

1939 में जोसेफ मेयर की नियुक्ति कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में हो गई। मारिया अपने पति के साथ कोलम्बिया आई और वहीं रसायन विभाग में प्रवक्ता का काम करने लगीं। 1946 तक पति-पत्नी वहां रहे। इस दौरान मारिया ने नोबल पुरस्कार-विजेता हैराल्ड युरी के मार्ग-दर्शन में युद्ध-विज्ञान पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किया—एक भौतिकीविद् के रूप में। 1940 में अपने

पति के साथ मिलकर उन्होंने एक पुस्तक लिखी, जो सांख्यिकी के संदर्भ में स्नातक विद्यार्थियों के लिए थी।

1946 में वे आईं शिकागो विश्वविद्यालय में। इस बार महज़ प्रोफेसर की बीवी के रूप में नहीं, स्वयं उन्हें भी भौतिकी के प्रोफेसर का पद मिल गया था। शिकागो में मारिया को एडवर्ड टेलर और एनरिको फेर्मी जैसे विख्यात भौतिकीविदों से मिलने और बातचीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसी ही बातचीत के दौरान उन्हें सुप्रसिद्ध 'एटामिक शेल थ्योरी'—परमाणु कवच सिद्धान्त—के लिए प्रेरणा मिली। मारिया मेयर एक जगह लिखती हैं—"वर्षों तक मैं इस ऊहापोह में रही कि कुछ तत्त्वों के 'आइसोटोप्स'—समस्थानिक—असाधारण रूप से स्थिर क्यों होते हैं? जब कि न्यूक्लियस—नाभिक—में न्यूट्रोन्स की संख्या वही है?"

ज्योपर्ट मारिया के 'शेल-माडल' को सार रूप में समझने के लिए परमाणु-संरचना की जानकारी ज़रूरी है। प्रत्येक परमाणु के केन्द्र में एक न्यूक्लियस—नाभिक—होता है—धनावेशी। नाभिक में धन आवेश वाले—पाज़िटिवली चार्ज्ड—प्रोटोन तथा बिना आवेश के—न्यूट्रल—न्यूट्रोन होते हैं, केवल हाइड्रोजन को छोड़कर जिसमें बस एक प्रोटोन ही होता है, न्यूट्रोन नहीं होता। नाभिक के इर्द-गिर्द ऋणावेशी इलेक्ट्रोन नामक हल्के कण घूमते रहते हैं। नाभिक के भीतर जितने भी धनावेशी प्रोटोन होते हैं, उतने ही बाहर ऋणावेशी इलेक्ट्रोन घूमते हैं। नाभिक के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रोन लगभग उसी तरह घूमते हैं, जैसे सौरमण्डल में सूर्य के इर्द-गिर्द पृथ्वी, शुक्र आदि ग्रह।

पृथ्वी की तरह ही इलेक्ट्रोन अपनी धूरी पर भी घूमते हैं। लेकिन ग्रहों और इलेक्ट्रोनों में एक अन्तर यह है कि इलेक्ट्रोनों की युगल रूप में चलने की विशेषता है—हाइड्रोजन को छोड़कर जिसमें केवल एक इलेक्ट्रोन होता है। सभी परमाणुओं में इलेक्ट्रोन नाभिक से स्थायी रूप से बंधे हैं। ज्यों-ज्यों परमाणु बड़े होते जाते हैं, इलेक्ट्रोन एक-केन्द्रीय परिधियों में बढ़ते जाते हैं। इन्हींको 'जादुई संख्या' के नाम से पुकारा जाता है। यह जादुई संख्या रसायन के लिए बहुत उपयोगी है। किन्तु जहां तक भौतिकी का सवाल है, इसक

उपयोग बस यही है कि नाभिक में प्रोटोनों की संख्या का पता चल जाता है।

किन्तु नाभिक में प्रोटोन के अलावा न्यूट्रोन भी होते हैं जिनका भार प्रोटोनों के लगभग बराबर होता है। न्यूट्रोन और प्रोटोन के भार का योग ही परमाणु-भार कहलाता है। नाभिकीय भौतिकी की मुख्य समस्या यह जानने की है कि न्यूट्रोन और प्रोटोन में किस तरह की प्रक्रिया होती है। यह समस्या इस जानकारी के बाद और उलझ जाती है कि जो बल एक तरह के नाभिकीय कणों—प्रोटोन—को दूसरी तरह के नाभिकीय कणों—न्यूट्रोन—से बांधता है, वह उस बल से कई लाख गुणा अधिक है जो इलेक्ट्रोनों को नाभिक से बांधता है।

गहन बन्धन की इस शक्ति ने ही मारिया को 'न्यूक्लियस शेल थ्योरी' के प्रतिपादन की तरफ प्रेरित किया। इलेक्ट्रोनों की तरह नाभिकीय कणों में भी एक निश्चित 'जादुई संख्या' (न्यूट्रोनों की) है जो बन्धन की अधिकतम शक्ति के बिंदु पर होती है।

उधर जर्मनी में जे० एच० डी० जेंसन भी इसी सम्बन्ध में अनुसंधान कर रहे थे। उनके काम से प्रभावित होकर मारिया उनसे 1950 में मिली थी। विचारों के आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू हुआ। परिणामस्वरूप 1955 में दोनों की परमाणु-संरचना के प्रारम्भिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित संयुक्त 'एलीमेंटरी थ्योरी आफ न्यूक्लियस शेल स्ट्रक्चर' प्रकाशित हुई।

शुरू-शुरू में उचित प्रोत्साहन न मिलने पर उन्हें कुछ निराशा हुई। किन्तु थोड़ा समय बीतने पर ही उनके 'शेल-माडल' को सब ओर से मान्यता मिलने लगी। कुछ क्षेत्रों में तो यहां तक कहा गया कि द्वितीय युद्ध के बाद की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खोज है।

मारिया की इस खोज से नाभिकीय भौतिकी अनुसंधान को एक नई दिशा मिली। परमाणु-सम्बन्धी कई अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाना आसान हो गया। विज्ञान-जगत् द्वारा उनकी सेवाओं का उचित सम्मान किया गया। 1956 में वे राष्ट्रीय विज्ञान ऐकेडेमी की सदस्या मनोनीत हुईं।

1960 में उन्हें कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में भौतिकी का

प्रोफेसर नियुक्त किया गया। वे अमेरिकन फिज़िकल सोसाइटी की सदस्या भी रहीं।

और फिर 1963 में मिली विश्व की महानतम मान्यता—डा० यूजीन पाल विगनर और सहयोगी जे० एच० डी० जेंसन के साथ संयुक्त रूप से भौतिकी का नोबल पुरस्कार।

20 फरवरी, 1972 को मारिया ज्योपर्ट का 66 साल की आयु में देहान्त हो गया। वे दो बच्चों की मां थीं—एक लड़का, एक लड़की।

विज्ञान की ऊंचाइयों को छूने वाली मारिया का हृदय मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत था। कविता करना उनकी प्रिय हाबी थी। इसके अलावा वे बागवानी में भी दिलचस्पी रखती थीं।

मारिया ज्योपर्ट के लिखे 40 के लगभग शोध-पत्र और निबन्ध हैं।

डोरोथी क्रोफुट हॉजकिन

(1910—)

1964 का रसायन में नोबल पुरस्कार इंगलैंड की डोरोथी क्रोफुट हॉजकिन को मिला।

डोरोथी क्रोफुट का जन्म 12 मई, 1910 को काहिरा में हुआ। पिता जॉन विंटर क्रोफुट वहां मिस्री शिक्षा-सेवा में नियुक्त थे। डोरोथी के जन्म के बाद वहां से शीघ्र ही वे सूडान चले गए—सूडान में शिक्षा और पुरातत्त्व विभाग के निदेशक होकर। बालिका डोरोथी भी पिता के साथ सूडानी संस्कृति से सम्बन्धित सूडान की पुरानी चीज़ों का अध्ययन करती रही जिससे उसे इस देश से बहुत लगाव हो गया। 1926 में सेवा-निवृत्त होने के बाद भी पिता अपना अधिकांश समय पुरातत्त्व-सम्बन्धी अध्ययन में लगाते थे। कुछ समय उन्होंने ब्रिटिश स्कूल आफ आर्कियोलाजी, जेरूसलम, के निदेशक के रूप में भी कार्य किया और माउण्ट ओपल, जेराश, बसरा, सुमेरिया आदि में खुदाई-कार्य करवाया।

डोरोथी की मां ग्रेस मेरी क्रोफुट भी अपने पति के कार्य में रुचि ले, उसमें सक्रिय भाग लेती थीं। वे बुनाई की प्रारम्भिक तकनीकों की अधिकारी विदुषी हो गईं। वे एक बहुत अच्छी वनस्पतिविद् भी थीं। खाली समय में उन्होंने सूडान की वानस्पतिक सम्पदा के चित्र बनाए। डोरोथी भी मां के साथ जेराश की खुदाई से प्राप्त पच्चीकारी से बनी पटरियों के चित्र बनाती रही। विश्वविद्यालय में विज्ञान का अध्ययन करते हुए कई वार वह सोचती, रसायन छोड़कर पुरातत्त्व का अध्ययन करने लगूं। पर दोनों रुचियां साथ-साथ पनपने लगीं—एक कैरियर के रूप में, दूसरी हाबी के रूप में।

रसायन-विज्ञान और मणिभों (क्रिस्टल्स) में डोरोथी की रुचि दस वर्ष की आयु में ही जाग्रत् हो गई थी जब कि परिवार के एक



डोरोथी क्रोफुट हॉजकिन
1964 में रसायन पर नोबल पुरस्कार

मित्र डा० ए० एस० जोसेफ ने उन्हें इस ओर मोड़ दिया था। डा० जोसेफ ने उन्हें कई रसायन दिए और इल्मेनाइट के विश्लेषण में उनकी सहायता की। उनका बचपन अधिकतर नोरकोक में ग्लैडस्टोन नामक नगर में अपनी बहनों के साथ बीता। वहीं वे 1921 से लेकर 1928 तक सर जॉन लैमन स्कूल, बैकल्स, में पढ़ीं। प्रयत्न करने पर उन्हें व उनकी एक सहपाठिनी नोरा पुसी को लड़कों के साथ रसायन-विज्ञान पढ़ने की अनुमति मिल गई। स्कूल के अंतिम वर्ष में उन्होंने निर्णय ले लिया कि विश्वविद्यालय-स्तर पर आगे जीव-रसायन में अध्ययन करेंगी।

1928 से 1932 तक उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय तथा सोमरविले कालेज में अध्ययन किया। वहां की प्रिंसिपल श्रीमती मार्गरेट फ्रे को वे बहुत मानती थीं। प्रथम वर्ष उन्होंने रसायन और पुरातत्त्व के सम्मिलित अध्ययन में बिताया। जेराश की खुदाई से प्राप्त कांच घनों का विश्लेषण करने पर उन्हें सलाह दी गई कि वे मणिभ विज्ञान (क्रिस्टलोग्राफी) का विशेष कोर्स ले लें। इस तरह डोरोथी क्रोफुट ने एक्स-रे क्रिस्टलोग्राफी पर अपना शोध-कार्य आरंभ किया। यहां उन्हें श्री एच० एम० पावेल के साथ कार्य करने का अवसर मिला। श्री पावेल की वे पहली शोध-छात्रा थीं जिन्होंने थेलियम डाईएल्काइल हैलाइड्स पर कार्य किया। थोड़े समय के लिए वे प्रो० विक्टर गोल्डस्मिथ की हैडलबर्ग स्थित प्रयोगशाला में भी रहीं।

आक्सफोर्ड से कैम्ब्रिज जाने व जे० डी० बरनाल के साथ कार्य करने का अवसर भी उन्हें डा० जोसेफ की प्रेरणा से मिला, जब कि प्रो० लारी के साथ डा० जोसेफ से उनकी मुलाकात ट्रेन में अचानक हो गई। इसके पूर्व आक्सफोर्ड में उन्होंने बरनाल का एक लेक्चर सुना था, जो धातुओं के अध्ययन के सम्बन्ध में था। इससे वे बरनाल से बहुत प्रभावित हुई थीं और धातुओं में अधिक रुचि लेने लगी थीं। 1932 से बरनाल की रुचि स्टिरोल्स की ओर मुड़ गई थी तो डोरोथी भी स्टिरोल्स में विशेष रुचि लेने लगी थीं। कैम्ब्रिज में उनके दो वर्ष बहुत अच्छे बीते। उन्होंने कई मित्र बनाए और बरनाल के साथ मिलकर

कई समस्याओं पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मौसी डोरोथी हुड उनका सारा खर्च उठाती थीं। साथ ही सोमरविले कालेज से उन्हें पिचहत्तर पौंड की छात्रवृत्ति भी मिलती थी। 1933 में सोमरविले कालेज से मिली इस शोध-छात्रवृत्ति से वे एक वर्ष तक आक्सफोर्ड में व एक वर्ष तक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शोध कार्य कर सकती थीं। 1934 से आज तक वे सोमरविले कालेज व आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में ही हैं—बीच के कुछ अन्तराल छोड़कर। अधिकांश समय 'आफिशियल फलो' ही रहीं व महिला कालेज में नेचुरल साइंस पढ़ाती रहीं। फिर 1946 में विश्वविद्यालय में डिमांस्ट्रेटर और लेक्चरर हो गईं। 1956 से एक्स-किरण मणिभ-विज्ञान (एक्स-रे क्रिस्टलोग्राफी) की रीडर हो गईं व फिर 1960 में रायल सोसायटी की ओर से वुल्फसन रिसर्च प्रोफेसर नियुक्त हुईं।

आरम्भ में उन्होंने खनिज-विद्या और मणिभ-विज्ञान विभाग में काम किया, जिसके अध्यक्ष प्रो० एच० एल० बोमैन थे। 1944 में विभाग का विभाजन होने पर रसायन मणिभ-विज्ञान के उप-विभाग में कार्य करती रहीं, जहां रीडर श्री एच० एम० पावेल और प्रोफेसर श्री सी० एन० हिन्शलवुल थे। 1934 में जब वे आक्सफोर्ड लौटी थीं तो उन्होंने सर राबर्ट राबिन्सन् की मदद से एक्स-रे मशीन के लिए पैसे इकट्ठे करने शुरू कर दिए थे। बाद में उन्हें रौकफेलर व न्यूफील्ड फाउंडेशन से सहायता मिल गई थी। कैम्ब्रिज में श्री बरनाल के साथ आरम्भ किए गए स्टिरोल्स-सम्बन्धी शोध-कार्य को भी उन्होंने जारी रखा व जीव-विज्ञान-सम्बन्धी अणुओं में दिलचस्पी लेने लगी थीं, जिनमें इंसुलिन भी शामिल थी। आरम्भ में इस कार्य में उनके साथ एक-दो विद्यार्थी ही शामिल थे। 1958 तक वे विश्वविद्यालय के संग्रहालय के कमरों में ही कार्य करती रहीं। पेनीसिलीन पर उन्होंने 1941 में कार्य प्रारम्भ किया व विटामिन बी-12 पर 1948 में। इसी तरह कार्य बढ़ता गया व शोध-विद्यार्थी भी। बाद में अन्य विश्वविद्यालयों के अतिथि-शोधकर्ता भी शामिल होते गए, जिनका मुख्य विषय प्राकृतिक उत्पादनों का एक्स-किरण-विश्लेषण होता था।

1945 से डोरोथी क्रोफुट अनेक गोष्ठियों में भाग लेने लगी थीं। इस सम्बन्ध में उन्होंने चीन, अमेरिका, रूस आदि कई देशों का भ्रमण किया और क्रिस्टलोग्राफी के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की। 1947 में वे रायल सोसाइटी की फेलो मनोनीत की गई। 1956 में नीदरलैंड की रायल ऐकेडेमी आफ साइंसेज़ की विदेशी सदस्या नियुक्त हुई तो 1958 में अमेरिकन ऐकेडेमी आफ आर्ट्स एण्ड साइंसेज़ (बोस्टन) की सदस्या। 1964 में उन्हें नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके बाद उनकी अभी हाल की खोजों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, इंसुलिन के मणिभ की संरचना का समाधान। इसके अन्तर्गत इंसुलिन के अणु में परमाणुओं की त्रिविमितीय व्यवस्था को स्पष्ट किया गया है। यह शोध 1969 में प्रकाशित हुई थी। डोरोथी क्रोफुट हॉजकिन के अनुसार, "यह कार्य अनेक सहयोगियों के सम्मिलित प्रयास से सम्भव हुआ है। इसके मूल समाधान में सुधार किया गया है व पिछले दो वर्षों में जो विकास इस दिशा में हुआ, उसकी सूचना हमने मार्च, 1971 की 'नेचर' पत्रिका में दी है।"

डोरोथी क्रोफुट का विवाह 1937 में श्री थामस हॉजकिन के साथ हुआ था। श्री हॉजकिन के पिता व दादा प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थे। उनका मुख्य विषय अफ्रीका व अरब संसार के इतिहास व राजनीति का अध्ययन था। श्री हॉजकिन 'इन्स्टीट्यूट आफ अफ्रीकन स्टडीज़', घाना विश्वविद्यालय के निदेशक रहे। फिर 1964 से आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में नये राज्यों की सरकारों के सम्बन्ध में (विशेषतया अफ्रीका के सम्बन्ध में) लेक्चरर रहे। अब इसी वर्ष अवकाश ग्रहण कर अपने शेष जीवन में उपन्यास की योजना बना रहे हैं।

डोरोथी क्रोफुट हॉजकिन तीन बच्चों की मां हैं। बड़ा लड़का ल्यूक किंग्स कालेज, लंदन, में गणित का वरिष्ठ प्राध्यापक है। छोटा टोबी हार्टीकल्चर रिसर्च स्टेशन में वैज्ञानिक अधिकारी है। और लड़की एलिज़ाबेथ खारतूम विश्वविद्यालय में मध्यकालीन यूरोपीय इतिहास की लेक्चरर है। इस तरह वैज्ञानिक मां और इतिहासज्ञ पिता दोनों की रुचियों का बच्चों में समन्वय हुआ है।

सेल्मा लागरलोफ

(1858—1940)

साहित्य में 1909 का नोबल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली प्रथम लेखिका सेल्मा लागरलोफ स्वीडन की रहने वाली थीं। इसके पूर्व नौ बार यह पुरस्कार दिया जा चुका था, पर राष्ट्रीयता या जातीयता के भेदभाव बिना पुरस्कार दिए जाने की वसीयत के अनुसार अल्फ्रेड नोबल के देश स्वीडन-निवासियों को सेल्मा लागरलोफ ने ही पहली बार इस पुरस्कार से गौरवान्वित किया। उन्हें यह पुरस्कार 51 वर्ष की अवस्था में मिला। इसके तुरन्त बाद स्वीडिश ऐकेडेमी ने उन्हें अपना सदस्य भी बना लिया।

सेल्मा का जन्म 20 नवम्बर, 1858 को स्वीडन में वार्मलैंड के मारबाका नामक स्थान पर एक कुलीन घराने में हुआ था। उनके पिता एरिक लागरलोफ फौज में लेफ्टिनेंट थे। माता लोबिसा वालराथ स्वीडन के सचिव परिवार की पुत्री थीं—गृहकार्य और सामाजिक व्यावहार में दक्ष एवं शालीन। पिता बड़े खुशमिज़ाज, साहसी और ज़िन्दादिल व्यक्ति थे। सेना से अवकाश प्राप्त करने के बाद वे प्रायः घर पर ही रहा करते और अपने पुराने साथियों व नये मित्रों से घिरे रहते। मेहमानों की आवभगत करने, मित्रों के बीच मनोरंजन और ज्ञानचर्चा में व्यस्त रहने और बच्चों के साथ खेलने में उन्हें विशेष आनन्द आता था।

सेल्मा, जिसका पूरा नाम था—सेल्मा ओटिलियाना लोविसा लागरलोफ की शिक्षा-दीक्षा का पिता को विशेष ध्यान रहता। चूंकि सेल्मा साढ़े तीन वर्ष की आयु में ही लकवे का शिकार हो हमेशा के लिए लंगड़ी हो गई थी, वह हीनभाव से घिरकर जीवन में पिछड़ न जाए, इसका वे बराबर ध्यान रखते। स्वीडन का प्राचीन इतिहास और अपने वंश की परम्परागत कहानियां वे उसे बड़े चाव से सुनाया

करते थे। दादी भी उसे खूब किस्से सुनाया करती थीं।

परिवार प्रतिष्ठित था। घर में सुख-समृद्धि की कमी न थी। सेल्मा घर-भर की दुलारी लड़की थी। उसकी बाधित अवस्था के कारण सभी उसका खास ध्यान रखते कि उसे कोई भी शारीरिक या मानसिक कष्ट न हो। इसत रह शारीरिक विकृति के बावजूद उसका बचपन सुख से बीता। शिक्षा-दीक्षा की घर पर ही पूर्ण व्यवस्था कर दी गई। घर में एक खासा पुस्तकालय भी था। सेल्मा वहां बैठकर पढ़ती रहती, जिससे बचपन में ही उसका सामान्य ज्ञान काफी बढ़ा-चढ़ा था। आगे चलकर 'मारबाका' नामक अपनी रचना में उन्होंने अपनी बाल्यावस्था का अच्छा चित्रण किया है।

अपनी पहली कहानी में गोस्टा बर्लिंग नाम के नायक के चित्रण में भी सेल्मा ने बचपन में पिता से सुनी एक कहानी का उपयोग किया है। वह व्यक्ति कवि है, गायक है, नृत्यकला-विशारद है और सामाजिक समारोहों की जान है। उसके आकर्षक व्यक्तित्व पर दर्शक ही मुग्ध नहीं होते, यह चित्रण पढ़ते-पढ़ते पाठक भी मुग्ध होने लगते हैं। फिर भी उस नायक में एक ज़बर्दस्त त्रुटि है। वह है उसमें पुरुषोचित्त गुणों का अभाव। पाठक पहले मुग्ध होता है फिर संवेदनशील हो खो-सा जाता है।

ऐसी ही एक अन्य रचना है—'दुलहन का मुकुट', जिसमें सेल्मा ने राज्यमंत्री परिवार की अपनी ननिहाल के तौर-तरीकों का बड़ा स्वाभाविक चित्र खींचा है। इसी तरह दादी से सुनी लोक-कथाओं तथा अन्य ग्रामीण किंवदंतियों का भी उन्होंने अपनी रचनाओं में खुलकर प्रयोग किया है।

कविता और नाटक लिखने की उनकी इच्छा बचपन में ही जाग गई थी। स्टाकहोम में अपने चाचा के साथ जिस दिन उन्होंने नाटक देखा था, उसी दिन नाटक लिखने का संकल्प मन में कर लिया था। उस रात वे इतनी भावुक हो उठी थीं कि बैठकर एक नाटक और उस नाटक (प्रार्थना) सम्बन्धी कई पद्य लिख डाले। पर बचपन में सेल्मा पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा वेलमैन की स्फुट कविताओं का। वेलमैन की कविताओं में संगीत, करुणा और हास्य तीनों गुणों का



सेल्मा लागरलाफ
1909 में साहित्य पर नोवल पुरस्कार

अद्‌भुत सामंजस्य उन्हें बहुत भाया और वे गीत लिखने की ओर आकृष्ट हो गईं। फिर जब शिक्षक महाविद्यालय की एक छात्रा के नाते उन्हें वेलमैन की रचनाओं से सम्बन्धित व्याख्यान सुनने का अवसर मिला तो वे भावुकता के अतिरेक में बह गईं और यह प्रेरणा उनके भीतर एक साहित्यकार का बीजारोपण कर गई। प्रारम्भिक प्रकाशन कविताओं का ही रहा।

अध्यापन-प्रशिक्षण लेने के बाद बाईस वर्ष की आयु में वे लैण्डक्रोना नामक नगर में, जो उत्तरी स्वीडन में है, अध्यापिका का काम करने लगीं। साथ ही समय बचाकर कुछ लिखने भी लगीं। पाठशाला की कार्य-व्यस्तता के बीच जब कई-कई दिन लिखने का समय न मिलता तो विद्यार्थियों को ज़बानी कहानियां सुनाकर सन्तोष कर लेतीं। वहीं उन्होंने बाल-मनोविज्ञान और बच्चों की कहानी-विषयक रुचि का प्रत्यक्ष अध्ययन किया। 'एलिस इन वंडरलैंड' की तरह सेल्मा लागरलोफ की बच्चों के लिए लिखी गई दो पुस्तकें 'दी वंडरफुल एडवेंचर्स आफ नील्स' और 'फर्दर एडवेंचर्स आफ नील्स' भी विद्यार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी पुस्तकें हैं और सारे संसार में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं।

जन्मस्थान वार्मलैण्ड और अध्यापन-क्षेत्र डेल्केरिया (लैण्डक्रोना नामक स्थान डेल्केरिया में ही है) की लोक-कथाओं का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था, जिनका प्रचुर चित्रण उनकी रचनाओं में है। इन प्रदेशों में ग्राम-गीतों और ग्रामीण कहानियों की भरमार है। हमारे यहां प्रचलित 'ढोलामारू' की कहानी की तरह ही सेल्मा के प्रदेश में 'गोस्टा बर्लिंग' के नाम पर बहुत-सी कहानियां प्रचलित हैं। ऐसी कहानियों का संग्रह कर उन्हें कलात्मक ढंग से साहित्यिक रूप दे सेल्मा ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की, जिनमें 'गोस्टा बर्लिंग' बहुत ही लोकप्रिय और चर्चित हुई। अध्यापन-कार्य में समय न मिलने के कारण इसे उन्होंने बड़े दिन की छुट्टियों में अपने पुराने घर जाकर लिखा था। पहले यह कथा पद्यात्मक रूप में लिखी गई, फिर उन्होंने इसे नाटक का रूप देना चाहा, अन्त में संक्षिप्त कहानी के रूप में लिखकर तैयार कर दिया। बाद में ऐसी कई अन्य कहानियां भी लिखी

गईं। फिर 1890 में अपनी बहन के आग्रह पर उन्होंने 'आइडन' नामक पत्रिका द्वारा आयोजित कहानी-प्रतियोगिता में अपनी कुछ कहानियां भेज दीं। पत्रिका की ओर से विज्ञप्ति निकली कि कई कहानियां अस्पष्ट होने के कारण प्रतिस्पर्धा में सम्मिलित नहीं की गईं तो सेल्मा को लगा, अवश्य ही ये उनकी कहानियां होंगी। पर बाद में सफलता की सूचना और बधाई का तार पाकर हैरान रह गईं। पत्रिका के सम्पादक ने यह भी लिखा कि वे इस कहानी के कथानक पर एक उपन्यास लिख डालें। और सेल्मा स्कूल से छुट्टी ले उपन्यास-लेखन में जुट गईं।

1894 में 'गोस्टा बर्लिंग' नाम से अपनी पहली पुस्तक के प्रकाशित होते ही सेल्मा लागरलोफ की सर्वत्र चर्चा होने लगी। पियक्कड़ और फक्कड़ कवि 'गोस्टा बर्लिंग' के मोहक लोक-चित्रण ने सभी का मन मोह लिया। साथ ही उन्हें देशाटन के लिए छात्रवृत्ति मिल गई तो उन्होंने अध्यापिका के पद से त्यागपत्र दे दिया। छात्रवृत्ति पा वे इटली गईं, फिर समूचे यूरोप का भ्रमण करती हुई फिलिस्तीन तक गईं। फिलिस्तीन में उन्हें सरकार की ओर से एक विशेष उद्देश्य से भेजा गया था कि वे 'नास' में जाकर बसे स्वीडन-निवासियों का अध्ययन कर उनका सही चित्रण करें। इन प्रवासियों की बीमारी और दरिद्रता की अफवाहें तब ज़ोरों पर थीं। कुमारी लागरलोफ ने उन्हें आंशिक रूप में सच बताते हुए उनका सही-सही वर्णन किया। 'जेरूसलम' लिखने का कथानक भी उन्हें यहीं मिला। 'क्राइस्ट-दन्त-कथाएं' भी इस यात्रा के बाद लिखी गईं।

बाद में 'जेरूसलम' और 'पुर्तगाल का सम्राट' ये दोनों उपन्यास 'लन्दन टाइम्स' में धारावाहिक प्रकाशित हुए और सेल्मा लागरलोफ की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। पुर्तगाल के सम्राट की नायिका 'बेला बजाने वाली लिलिक्रोना' का चरित्र-चित्रण भी 'गोस्टा बर्लिंग' की तरह बड़ा मोहक है। इन दोनों उपन्यासों को पढ़ने पर उन देशों का सामाजिक चित्र बड़े सहज रूप में उभरकर पाठक के मन पर उतरता है। समीक्षकों की राय में इस तरह के उपन्यास भौगोलिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में बेजोड़ हैं।

सेल्मा ने अनुभव किया कि जो देश ईसाई-धर्मावलम्बी नहीं हैं उनमें ईसाईयों के प्रति एक घृणा की भावना है। दूसरी ओर ईसाई भी गैर-ईसाइयों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। धर्म मानव-समाज में पारस्परिक घृणा को प्रोत्साहित करे, यह उनका धार्मिक हृदय सहन नहीं कर सका। इसी गहरी खाई को पाटने का प्रयत्न है, उनका प्रख्यात उपन्यास 'मिरैकिल्स आफ एंटीक्राइस्ट', ठीक उसी तरह जैसे हमारे यहां कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की खाई पाटने के लिए अपनी पद्य-रचना की है। इटली के बाद सिसली की यात्रा के दौरान इस कृति की सामग्री जुटाई गई थी।

1894 में ही 'इनविज़िबल लिंक्स' या 'अदृश्य श्रृंखला' नाम से उनकी संक्षिप्त कहानियों का जो संग्रह प्रकाशित हुआ था, उसमें किसानों, मछुओं, बच्चों और जानवरों के अन्तरात्मक सम्बन्ध का सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रकाशन के बाद ही सेल्मा लागरलोफ को स्वीडिश ऐकेडेमी, सम्राट आस्कर और राजकुमार यूजेन से कई स्वर्ण-पदक और वार्षिक पुरस्कार मिले हैं। 'अपसाला' यूनिवर्सिटी ने उन्हें एल० एल० डी० की उपाधि से भी सम्मानित किया था। स्टाकहोम में उन्हें पुरस्कार लेते देखने के लिए लोगों का तांता बंध गया था और सम्राट ने ग्राण्ड होटल में उन्हें दावत भी दी थी। इसी दावत के अवसर पर भाषण देते हुए कुमारी लागरलोफ ने अपने लेखन पर अपने पिता के व्यक्तित्व के प्रभाव और उनके द्वारा दी गई अपनी साहित्यकार बनने की प्रारम्भिक प्रेरणा का उल्लेख किया था।

इस प्रकार 1909 में नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के पूर्व ही कुमारी लागरलोफ काफी प्रसिद्धि और प्रशंसा पा चुकी थीं। पुरस्कार उन्हें इसके पूर्व भी मिल जाता, पर ऐकेडेमी के सचिव वाइसेन इनको पुरस्कार दिए जाने के विरुद्ध थे इसलिए कई वर्ष यह प्रस्ताव टलता रहा। पर प्रतिभाओं को विरोध के बावजूद आगे आने से कौन रोक सकता है! अन्ततः 1909 में सारे विरोधों को तोड़कर यह पुरस्कार उन्हें मिल ही गया।

1911 में जब स्त्री-मताधिकार कांग्रेस का अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन

हुआ, तो उसमें कुमारी लागरलोफ द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण भाषण का अनुवाद संसार के सभी प्रमुख पत्नों में प्रकाशित किया गया। इस भाषण का एक उल्लेखनीय स्थल है जिसमें उन्होंने गार्हस्थ्य-सुख को सभी ऐहिक सुखों की कुंजी कहा है। कुमारी सेल्मा लागरलोफ देखने में विशेष सुन्दर नहीं थीं। उनके जीवन में रोमांस भी केवल कुछ दिनों के लिए ही आया था और शायद यह प्रेम-सम्बन्ध सफल नहीं हो पाया था। फिर वे आजीवन अविवाहित रहीं।

इसी वर्ष उनकी एक और मधुर रचना 'लिलिक्रोना का घर' प्रकाशित हुई, जिसका अनुवाद अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुआ। संगीत की तन्मयता का जितना मनोमुग्धकारी वर्णन इस पुस्तक में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

उनकी 'दि आउट कास्ट' रचना में दिखाया गया है कि गम्भीर प्रकृति के सच्चे और कोमलहृदय व्यक्तियों को समझने में संसार प्रायः असमर्थ रहता है और उनके साथ अन्याय करने पर तुल जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान लिखी गई इस पुस्तक में युद्ध का भी प्रासंगिक वर्णन है। यद्यपि सेल्मा का देश युद्धलिप्त नहीं था, पर एक संवेदनशील लेखिका अपने समय की सर्वाधिक विनाशकारी घटना से अलिप्त कैसे रह सकती थी! उन्होंने पवित्र मानव-जीवन पर युद्ध के आतंक और कुप्रभावों का मार्मिक चित्रण किया है। इस पुस्तक का अनुवाद 1922 में अमेरिका से प्रकाशित हुआ था।

इनके अलावा 'खज़ाना' और 'लोवनस्कोल्ड्स की अंगुठी' उनकी प्रारम्भिक रचनाओं के संग्रह हैं। प्रथम में साधारण कोटि की कहानियां हैं, द्वितीय में जन-श्रुतियों, रीति-रिवाजों और हास-परिहासों का जीवन्त चित्रण, जो स्थानीय होते हुए भी मनोरंजन की दृष्टि से विश्व-भर के पाठकों को आकर्षित करता है।

'उनकी 'गोस्टा बर्लिंग' की कहानी तथा एक नाटक 'मार्शक्राफ्ट की लड़की' पर सफल फिल्में भी बनी हैं जो स्वीडन, यूरोप और अमेरिका में अच्छी चलीं।

कुमारी सेल्मा लागरलोफ छह भाषाएं अच्छी तरह पढ़-लिख लेती थीं। यद्यपि उनकी रचनाएं स्थानीय प्रकृति की हैं एवं मुख्यतः राष्ट्रीय

विचारों और भावनाओं पर ही आधारित हैं फिर भी मानवीय संवेदना और जीवन की समस्याओं के सार्वजनीन विश्लेषण की दृष्टि से उन्हें एक अन्तर्राष्ट्रीय विभूति कहने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। स्वीडिश ऐकेडेमी की सदस्या चुने जाने पर विश्व में नारी का अपने ढंग का यह पहला सम्मान था। सन् 1939 में वे बीमार पड़ी और 16 मार्च, 1940 को 81 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

अनेक पुस्तकों, कहानियों और सामाजिक-धार्मिक उपन्यासों की रचयिता कुमारी लागरलोफ की रचनाओं में अत्यधिक सरलता और सादगी है। उनमें लोक-जीवन, लोक-संस्कृति और 'घर' का प्रमुख स्थान है एवं देश के जीवन और साहित्य को एकाकार करने की अद्‌भुत क्षमता।

उन्हें पुरस्कार प्रदान करते समय स्वीडिश ऐकेडेमी की ओर से कहा गया :

"कुमारी सेल्मा लागरलोफ के उच्च आदर्शवाद, आत्मिक बोध तथा जीवन्त कल्पना-शक्ति, जो इनकी रचनाओं की विशेषता है, के लिए इन्हें यह पुरस्कार दिया जा रहा है।"

प्रमुख कृतियां

1. दि स्टोरी आफ गोस्टा र्बालग
2. इनविज़िबिल लिंक्स
3. मिरैकिल्स आफ एण्टीक्राइस्ट
4. फ्राम ए स्वीडिश होमस्टीड
5. वण्डरफुल एडवेंचर्स आफ नील्स
6. फर्दर एडवेंचर्स आफ नील्स
7. दि एम्परर आफ पोर्चुगालिया
8. जेरूसलम
9. मारवाका
10. दि डायरी आफ सेल्मा लागरलोफ
11. दि आउटकास्ट
12. दि ट्रेज़र

13. दि गर्ल फ्राम दि मार्शक्राफ्ट (हिन्दी अनुवाद 'बहिष्कार' नाम से)
14. दि ब्राइडल क्राउन
15. क्राइस्ट लीजेंड्स
16. लिलिक्रोनाज़ हाउस

ग्रेज़िया डेलेडा

(1875—1936)

1926 का साहित्य में नोबल पुरस्कार (सार्डीनिया) इटली की प्रख्यात कहानी-लेखिका ग्रेज़िया डेलेडा को प्रदान किया गया। ग्रेज़िया डेलेडा यह पुरस्कार पाने वाली विश्व की दूसरी महिला थीं।

सेल्मा लागरलोफ की तरह ग्रेज़िया भी नोबल पुरस्कार पाने के काफी पहले प्रसिद्धि पा चुकी थीं पर उनकी ख्याति तब विश्वव्यापी नहीं थी। यद्यपि उनकी अनेक कहानियों का अनुवाद स्कैंडिनेवियन भाषा में हो चुका था पर अन्य देशों में उनका नाम नोबल पुरस्कार के वाद ही फैला। फिर तो उनके कई उपन्यास अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा और ख्याति अर्जित कर सके।

ग्रेज़िया डेलेडा का जन्म सार्डीनिया के एक छोटे-से शहर नोरो में 9 अक्तूबर, 1875 को हुआ था। पिता कानून के स्नातक थे पर उनकी रुचियां विविध थीं। कृषि, व्यापार, साहित्य, राजनीति, अध्यात्म सभी में उन्होंने मन लगाया। तीन बार वे नोरो के मेयर भी रह चुके थे। इस नाते उनके घर सभी वर्गों के लोग आकर अपनी व्यथा-कथा सुना जाते थे। उनके पास पुरोहितों, धर्माचार्यों, साहित्य-कारों और कलाकारों का भी जमघट लगा रहता था। घर में एक अच्छा पुस्तकालय भी था। ग्रेज़िया को अच्छी शिक्षा-दीक्षा मिली। साथ में यह पारिवारिक वातावरण उनके व्यक्तित्व-विकास में विशेष सहायक सिद्ध हुआ।

हाई स्कूल में ग्रेज़िया ने इटालियन भाषा का अध्ययन किया और पढ़ाई के साथ-साथ ही लिखना भी शुरू कर दिया। 10 से 12 वर्ष की अवस्था तक उनकी कई रचनाएं स्कूल-पत्रिका में छपीं। फिर 13 वर्ष की आयु में 'ट्रिब्यूना' पत्रिका में सुन्दर लेख प्रकाशित होने पर उन्हें 50 लीरा का एक चेक मिला। ग्रेज़िया का उत्साह तो इससे



ग्रेजिया डेलेडा
1926 में साहित्य पर नोबल पुरस्कार

बढ़ा ही, परिवार वालों ने भी उच्चशिक्षा की स्वीकृति दे उन्हें प्रोत्साहित किया।

सत्रह वर्ष की अवस्था में उनकी एक सुन्दर कृति 'सार्डीनिया का फूल' नाम से प्रकाशित हुई तो शीघ्र ही लोगों का ध्यान इस नवोदित लेखिका की ओर आकृष्ट हो गया। इसके शीघ्र बाद 'साधु आत्मा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका एक प्रसिद्ध इटालियन साहित्यकार ने लिखी थी और जिसकी लाखों प्रतियां बिकीं। ग्रेज़िया ने लिखा है कि इस उपन्यास के अधिकार किसी प्रकाशक को न दे वे स्वयं छपवा लेतीं तो उन्हें लाखों की आमदनी होती, पर तब वे एक अनुभवहीन तरुणी ही तो थीं। उन्होंने अपने सम्वन्ध में लिखते हुए यह भी बताया है कि अपनी आयु वे बढ़ाकर बताया करती थीं। जब तेरह वर्ष की थीं तो स्वयं को सोलह की वताती थीं और जब सोलह की थीं तो आयु बीस वर्ष कहती थीं कि छोटी बालिका की रचनाएं समझकर लोग उनकी कृतियों की उपेक्षा न कर दें।

विद्यार्थी-जीवन से ही वे सार्डीनिया की विविध जातियों के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करने लगी थीं। उनकी सभी रचनाओं में जन्मभूमि सार्डीनिया का किसी न किसी रूप में चित्रण अवश्य है। स्वदेश के लोगों का रहन-सहन, वहां के रीति-रिवाज, लोककथाओं का सजीव चित्रण ग्रेज़िया ने गद्य व पद्य दोनों में किया है। उन्होंने कई गीत और नाटक भी लिखे हैं पर ख्याति उन्हें कथाकार के रूप में ही मिली। प्रायः सभी कहानियों और उपन्यासों की पृष्ठभूमि में सार्डीनिया है। सार्डीनिया के सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "मैं सार्डीनिया को बखूबी जानती हूं और उससे प्यार करती हूं। इसके पर्वत और घाटियां मेरे ही अंग हैं। इसके लोग मेरे निजी परिचित लोग हैं। हमें विषय या प्लाट की खोज में दूर क्यों जाना चाहिए जब कि आंख खोलते ही हर रोज़ जीवन-नाटक के सभी उपकरण हमें उपलब्ध हो जाते हैं। शक्ति या पकड़ से बाहर के विषय में हाथ डालने की अपेक्षा हम अपने आस-पास के जीवन और अनुभव को ही क्यों न चित्रित करें? सार्डीनिया ने मुझे पुकार-पुकारकर कहा, मुझे वाणी दो, मेरे बारे में लिखो और

मैंने लिखा।"

इसके अलावा वे कहती थीं, "मैं अपने मन की शान्ति और सुख के लिए लिखती हूं। मन की शान्ति पहली चीज़ है। पाठक और सफलता तो बाद में आते हैं।" यद्यपि उनका घरेलू जीवन सुखद था पर बचपन में मेयर पिता के घर अनेक दुखी लोगों के दुःख देख-सुनकर उनके बाल-मन पर उसका जो अमिट प्रभाव पड़ा, वह उनकी रचनाओं के दुखद व मार्मिक प्रसंगों में सर्वत्र देखने को मिलता है। उनकी अधिकांश कहानियां दुखान्त हैं, पर मानवीय संवेदना और सहानुभूति की गहराई के साथ जीवन के उच्च आदर्शों से प्रेरित। दोस्तोवस्की और गोर्की का काफी प्रभाव उनपर परिलक्षित होता है। ग्रेज़िया की पुस्तकों में मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण न होकर, बाह्य जगत् का अति सुन्दर और प्रभावोत्पादक चित्रण मिलता है। घरेलू जीवन का जैसा वास्तविक और जीवंत चित्रण ग्रेज़िया ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

कविताओं और संक्षिप्त कहानियों से प्रारम्भ करके ग्रेज़िया डेलेडा शीघ्र ही बड़े-बड़े उपन्यास लिखने लगी थीं। सन् 1891 से 1931 के बीच कुल मिलाकर उन्होंने 44 पुस्तकें प्रकाशित कराईं, जिनमें अधिकांश उपन्यास ही हैं। अंग्रेज़ी में इनके अनुवाद कम हुए हैं, स्कैंडिनेवियन, जर्मन, फ्रेंच भाषाओं में अधिक। जिस तरह फ्रेडरिक मिस्त्राल ने प्रावेंस का और सिग्रिड अनासेट ने मध्यकालीन नार्वे का गुणगान किया है, उसी तरह ग्रेज़िया डेलेडा ने भी उच्च आदर्शों और मानवीय मूल्यों की स्थापना के उद्देश्य से प्रेरित हो अपने देश की परम्परा, संस्कृति और सार्डीनियन भाषा का पुनरुद्धार किया है। इटली-निवासी ग्रेज़िया की रचनाओं के विशेष प्रशंसक हैं। विगत पैंतीस वर्षों में यूरोपीय साहित्य में नई धाराएं बहाने वाले या नई देन देने वाले साहित्यकारों में ग्रेज़िया डेलेडा अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वे असाधारण लेखिका थीं। यद्यपि सारे पात्र और घटनास्थल सार्डीनियन होने के कारण बाहर के पाठकों को उन्हें सम्यक् रूप से समझने में कठिनाई होती है, फिर भी तथ्य-कथ्य के साथ उच्च मानवीय आदर्शों का समावेश कर उन्होंने अपनी रचनाओं को जिस

ऊंचाई पर पहुंचाया है, उसके लिए वे नोबल पुरस्कार की अधिकारिणी बनीं।

ग्रेज़िया डेलेडा का विवाह लोम्बार्डी-निवासी श्री मडसानी के साथ हुआ। पति को रोम में सेना-विभाग में नौकरी मिलने पर ग्रेज़िया को सार्डीनिया छोड़ रोम जाना पड़ा। वहां शहर से बाहर देहात में मकान बनवाकर ग्रेज़िया लिखने में ऐसे जुटीं कि प्रति वर्ष औसत एक से अधिक पुस्तक प्रकाशित होती गईं। उपन्यास लिखते समय वे उसका अन्त पहले से नहीं सोच लेती थीं बल्कि रचना के स्वाभाविक विकास पर बल देती थीं। उनकी दुखान्त रचनाओं में चोरों, डाकुओं, गुण्डों से सताए गए और खून-खराबी के शिकार व्यक्तियों के प्रति गहरी सहानुभूति है; साथ ही ईश्वरीय शक्ति पर अटूट विश्वास। ग्रेज़िया मानती थीं कि दुर्वृत्ति और पाप की विजय हो रही है, यह भ्रम हमेशा नहीं बना रहता। ईश्वर दुर्वृत्ति को अवश्य पराजित करता है, फिर चाहे यह पराजय किसी भी रूप में क्यों न हो। उनके 'दि मदर', 'नोस्टाल्जिया', 'एशेज़' आदि उपन्यासों में ऐसे भाव अप्रत्यक्ष रूप से बिखरे पड़े हैं।

'दि मदर' या 'मां' उपन्यास ने काफी ख्याति अर्जित की। 'नोस्टाल्जिया' में भी गहरी मानवीय संवेदना है। 'एशेज़' या 'राख' में दुख की गहरी छाया है, जिसका नायक अपने आकर्षक व्यक्तित्व और दुर्बल चरित्र के कारण नैतिक व सामाजिक संघर्षों से गुजरता हुआ अपने जीवन में आई दोनों स्त्रियों—मां और पत्नी—का विश्वास खो देता है और अन्त में राख में मिल जाता है। इस कथा को फिल्माया भी गया था। फिल्म अमेरिका में काफी पसन्द की गई।

'रीडस् इन द विंड' (हवा में सरकंडे के फूल) नामक रचना उनकी अपनी दृष्टि में सर्वाधिक प्रिय रचना है। उसमें बताया गया है कि हवा में झूमते सरकंडे के फूल की तरह ही मनुष्य के भाग्य का निर्णय भी हवा के रुख पर निर्भर करता है। 'फ्लाइट इन टू इजिप्ट' (मिस्र में उड़ान) रचना में भी ऐसे भावों का समावेश है।

'आफ्टर द डाइवोर्स' (तलाक के बाद) रचना काफी चर्चित और विवादास्पद रही। इसमें इवा नाम की एक स्त्री के पति को एक राज-

नीतिक अपराध में सत्ताईस वर्ष के लिए जेल हो जाती है। इस बीच सार्डीनिया में एक कानून पारित होता है कि जिन स्त्रियों के पति राजनीतिक अपराध में लम्बी सज़ा के कैदी हैं, वे दूसरे पुरुषों से विवाह कर लेने के लिए स्वतंत्र हैं। ग्रेजिया ने अपने उपन्यास की नायिका इवा से इस कानून की भर्त्सना करवाते हुए कहलवाया है, "ये कैसे विचार हैं ? क्या ईश्वर के अतिरिक्त कोई विवाह के पवित्र वंधन को भी रद्द कर सकता है ?" इस उपन्यास में एक अन्य स्त्री गिवोवनी का चरित्र भी बड़ा मार्मिक है। गोधूलि वेला में भी एक बन्द कमरे में निराश-हताश बैठी वह सिर हिलाती रहती है और कमरे के एकमात्र दरवाजे से झांकते सुदूर आकाश में टिमटिमाते एक तारे को निहारती रहती है। इसका भी पति जेल में है। ब्राण्टू नामक व्यक्ति उसे बेहद चाहता है। उसके लिए दुनिया में दो ही वस्तुएं हैं, एक मदिरा, दूसरी गिवोवनी। पर गिवोवनी अपनी मां के भय से और अपने जेलवासी पति का ध्यान कर उसके प्यार को निरन्तर ठुकराती रहती है। ऐसा करने में पाप की एक अदृश्य छाया भी उसके मन में मंडराती है जो उसे ब्राण्टू का प्रस्ताव स्वीकार करने से रोकती है। फिर भी अन्ततः परिस्थितियों से बाध्य हो वह ब्राण्टू को समर्पण कर देती है। ब्राण्टू से उसे एक बच्चा हो जाता है, फिर भी उसे लगता है, प्रेम वह अपने जेलवासी पति कांस्टैंटिनो से ही करती है, ब्राण्टू से नहीं। कांस्टैंटिनो जेल से छूटकर आता है तो अपनी पत्नी को पराई देखकर उसे बेहद धक्का पहुंचता है। पहले तो वह कहीं भाग जाना चाहता है पर गिवोवनी को देखते रहने का आकर्षण उसे भागने नहीं देता। वह वहीं बस जाता है, निराश हो एक अर्धविक्षिप्त लड़की से मिलने-जुलने लगता है, पर प्रतिदिन प्रतीक्षा गिवोवनी की ही करता है। फिर ब्राण्टू कुछ समय के लिए बाहर चला जाता है। मरणासन्न अवस्था में वापस आकर शीघ्र ही मर जाता है। तो स्थानीय परम्परानुसार मदर बैचीसिया कांस्टैंटिनो से कहती है, "बेचारा ब्राण्टू आज मर रहा है। परमात्मा शनिवार को मरने वाले को मुक्ति नहीं देता।" वातावरण बोझिल हो जाता है और कहानी का अन्त दुखान्त। पर ग्रेज़िया उसी समय आसपास बिखरे प्राकृतिक वैभव का सुन्दर चित्रण कर

वातावरण की इस बोझिलता को हल्का कर देती है। उपन्यास रोचक और मार्मिक है, पर पात्रों के चरित्र-चित्रण की त्रुटियों के कारण वह विवादास्पद रहा।

ग्रेज़िया की कुछ चुनी हुई प्रारम्भिक रचनाएं बाद में 'हैपर्स' मैगजीन में प्रकाशित की गईं। उनकी 'चमत्कार' कहानी 'संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां' में संकलित हुई। उनके 'घृणा' नाटक का अनेक बार सफलतापूर्वक मंचन किया गया। मुसोलिनी ग्रेजिया के बहुत प्रशंसक थे। 1936 में उन्होंने ग्रेजिया को 'इटैलियन ऐकेड़ेमी आफ इम्मार्टल्स' की सदस्या चुन लिया। इस सम्मान के साथ 1936 में ही मिले नोबल पुरस्कार के कारण इटली-निवासी ग्रेजिया को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। फिर भी अपनी प्रकृति के अनुसार ग्रेजिया सामाजिक सम्मेलनों-समारोहों में बहुत कम भाग लेती थीं। एकान्त जीवन ही उन्हें पसन्द था।

एक इटैलियन समीक्षक के अनुसार, "ग्रेजिया की शैली सुबोध और अपने-आप में निराली है। विदेशी साहित्यकारों का प्रभाव उन-पर नगण्य है; न ही उन्होंने विदेशियों को दृष्टि में रखते हुए लिखा है। उनकी सभी रचनाओं में सार्डीनिया है और उनका पूरा लेखन सार्डीनिया-निवासियों को समर्पित है। फिर भी मानवीय संवेदना, सजीव चित्रण और अद्‌भुत रचना-कौशल के कारण उनकी रचनाएं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की मानी गईं।" एक अन्य समीक्षक ने उनकी 'ला मार्डे' कहानी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि इटली में ऐसी कहानी और नहीं लिखी गई। ग्रेजिया की 'इपोपे' नामक कविता तो सारे सार्डीनिया के लोगों की ज़बान पर चढ़ गई थी।

नोबल पुरस्कार प्रदान करते हुए स्वीडिश ऐकेडेमी ने उनके बारे में कहा :

"आदर्शवाद से प्रेरित इनकी रचनाओं के लिए, जो अमूर्त को बड़ी सहजता और स्पष्टता के साथ मूर्त में ढाल अपने द्वीप के जीवन को चित्रित करती हैं तथा गहराई और सहानुभूति के साथ समूची मानव-जाति की समस्याओं का सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं, इन्हें यह पुरस्कार दिया जा रहा है।"

प्रमुख कृतियां

1. आफ्टर दि डाइवोर्स
2. दि मदर
3. रीड्स इन द विंड
4. एशेज़
5. टू मिरैकिल्स
6. फ्लाइट इनटू इजिप्ट
7. फ्लावर आफ सार्डीनिया
8. नोस्टाल्जिया
9. एनीम आनेस्ट

सिग्रिड अनसेट

(1882-1949)

सन् 1928 का साहित्यिक पुरस्कार पाने वाली सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका सिग्रिड अनसेट नार्वेजियन थीं। पुरस्कार पाने से पूर्व ही साहित्य-जगत् में उन्होंने अच्छा स्थान बना लिया था और सर्वत्र चर्चा होने लगी थी कि उन्हें शीघ्र ही विश्व-विख्यात नोबल पुरस्कार मिलेगा। उनके अधिकांश उपन्यासों का कथाकाल चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी और घटनास्थल नार्वे है, फिर भी सार्वजनीन मनोरंजन व आकर्षण की उनमें कमी नहीं है। चरित्र-चित्रण की विचित्रता और सजीवता, अद्‌भुत रचना-कौशल और सुन्दर मनोविश्लेषण के कारण उनके मोटे-मोटे उपन्यासों ने भी पाठकों को आश्चर्यचकित कर रखा था। पाठक उनके बारे में अधिक से अधिक जानने को उत्सुक हो ही रहे थे कि नोबल पुरस्कार की घोषणा ने इस एकान्तप्रिय और घरेलू ज़िन्दगी पसन्द करने वाली नारी को समूचे विश्व के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया।

सिग्रिड अनसेट का जन्म डेनमार्क के कैलेण्डबर्ग नामक स्थान में 10 मई, 1882 को हुआ था। पिता नार्वे के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता और पुरातत्त्वविद् थे। मां डेनिश थीं। सिग्रिड ने ओसलो के महिला महा-विद्यालय में शिक्षा पाई थी। बचपन में पिता की प्रेरणा से उन्हें नार्वे के इतिहास का अच्छा ज्ञान हो गया था। स्कूली अवस्था से ही उन्होंने पिता के सचिव का कार्य संभाल रखा था। उनकी नई-पुरानी पुस्तकों को संभालकर रखना, उनके लिखे कागज़-पत्रों की व्यवस्था करना, जब जो पुस्तक मांगें, लाकर देना और उनके संदर्भ खोजकर देना, यह सब काम उनके ज़िम्मे था। इसी तरह इतिहास-संदर्भों रप पिता से बात करते, उनकी व्याख्याएं सुनते सिग्रिड को इतिहास का-अच्छा ज्ञान हो चला था। पिता की अध्यवसायी प्रकृति का भी उन



सिग्रिड अनसेट
1928 में साहित्य पर नोबल पुरस्कार

पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इतिहासज्ञ पिता के सम्पर्क में अर्जित इस ज्ञान और अनुभव का अपने भावी उपन्यासों के लिए उन्होंने खासा संचय कर लिया था जो आगे चलकर काम आया।

पिता की मृत्यु हो जाने के बाद सिग्रिड ने कठिनाई से शिक्षा समाप्त की। फिर अपना जीवन एक अत्यन्त निम्न स्तर से प्रारम्भ किया—1899 में अपने शहर के ही एक कार्यालय में क्लर्की शुरू करके। 1909 तक दस वर्ष से इसी नौकरी में बनी रहीं। अपने दैनिक जीवन की अधिकांश शक्ति कार्यालय-कार्य में खर्च करके भी वे पढ़ने-लिखने का समय निकालकर अपने ध्येय की ओर धीरे-धीरे बढ़ती रहीं। दफ्तरों में काम करने वाली लड़कियों के जीवन और समस्याओं का सजीव चित्रण इसी काल की देन है। यही नहीं, इन दस वर्षों में नागरिक जीवन का एक सर्वांग चित्र भी उन्होंने अपने हृदय में अंकित कर लिया था, तभी तो गांव में रहकर लिखे उपन्यासों में शहरी चरित्रों की सही अवतारणा वे कर सकीं। किशोर व तरुणावस्था से उठकर प्रारम्भिक यौवनावस्था के ये वर्ष ही किसी युवती के लिए शायद प्रतिभा के सर्वोत्तम उपयोग के वर्ष होते हैं, सिग्रिड की इस उम्र की सचेत प्रतिभा ने यह सिद्ध कर दिया।

इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि बचपन में उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति चित्रकला की ओर थी। कुछ अभ्यास भी उन्होंने कर लिया था। पर पिता द्वारा इतिहास की ओर मोड़ दिए जाने पर चित्रकला-साधना में व्यवधान उपस्थित हो गया था। उनके उपन्यासों में मानव-प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों के सजीव शब्दचित्रों की भरमार सम्भवतः उनके चित्रकला की ओर स्वाभाविक सम्मान की देन है।

उनके प्रारम्भिक उपन्यास 'फ्रूं मर्थाआउलो', 'डेन लिकीलिज एलडर' और 'हैपी एज' थे। जैसा कि स्वाभाविक है, उनसे उन्हें विशेष प्रसिद्धि नहीं मिली। ये लिखे भी गए थे कार्यकारी जीवन की व्यस्तता के बीच—1907 से 1909 तक। फिर 1911 में उनका एक उपन्यास प्रकाशित हुआ—'जेनी'। इसने सिग्रिड को एकदम प्रसिद्धि दे दी। उनका नाम उच्च कोटि के लेखकों में गिना जाने लगा। इस

उपन्यास में ओसलो की कहानी दी गई है और प्रेम की समस्या का निर्वाह बड़े साहस व कौशल के साथ किया गया है जो कि उस समय की लेखिकाओं से प्रायः अपेक्षित नहीं था। नारी-प्रकृति का ऐसा स्पष्ट व सजीव चित्रण उस समय अन्यत्र दुर्लभ था।

'जेनी' की कहानी उनकी प्रतिनिधि कहानी मानी जाती है जिसमें प्रेम और उच्च जीवन दोनों की तलाश में भटकती नारी अन्त में निराश हो आत्महत्या कर लेती है। जेनी नार्वे की एक भावुक युवती है। अपनी मातृभूमि में अपने व्यक्तित्व-विकास के अवसर न पा वह कला-कौशल का अध्ययन करने रोम चली जाती है। कला-साधना से उसे सन्तोष भी मिलता है, आनन्द भी। पर आनन्द जब तक किसीसे बंटाया न जाए, उससे सुख प्राप्त नहीं होता। तब उसमें कला के साथ-साथ एक दूसरी भूख जागती है—प्रेम और प्रेमी की। अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में वह हेल्गे नामक व्यक्ति से प्रेम करने लगती है। पर हेल्गे उससे मानसिक और नैतिक—हर धरातल पर कमज़ोर साबित होता है। वह उसे पत्नी और मां के सम्मिलित प्यार-सा स्नेह और ममत्व देती है, पर पूर्णता और सार्थकता की मांग इससे भरती नहीं। जब वह हेल्गे के साथ नार्वे लौटती है तो पुनः निराशा से भर उठती है। वह फिर रोम लौट जाती है और कला में स्वयं को डुबोकर इस निराशा को भुला देना चाहती है। किन्तु कब तक? कुछ समय तक अपनी असफलता को झेलकर, अन्त में वह आत्महत्या कर लेती है। अन्तिम दृश्य इतना मार्मिक बन पड़ा है कि पाठक द्रवीभूत हो उठते हैं। जेनी एक जगह स्त्रियों की दशा का वर्णन करते हुए अपने कलाकार साथी गनर हेगेन से कहती है, "जिन्हें कोई प्रेम नहीं करता, उनका मन विभाजित और स्वभाव द्वन्द्वपूर्ण हो जाता है।" अपने इसी साथी से वार्तालाप करते हुए एक अन्य जगह जेनी कहती है, "काम करने का अपना आनन्द है जो एकदम व्यक्तिगत बात है। इसे हम किसीसे बंटा नहीं सकते, इसलिए काम से आनन्द तो प्राप्त कर सकते हैं सुख नहीं।"

जेनी के बाद सिग्रिड अनसेट ने विवाहिता स्त्रियों को नायिका बनाकर कई कहानियां लिखीं और उनमें प्रेम के मार्ग में आने वाले

संघर्ष और बाधाओं का वर्णन किया। इन कहानियों में करुणा तो है पर 'जेनी' की-सी निराशा नहीं। 'जेनी' के बाद इस दिशा में आश्चर्यजनक विकास है, मानो लेखिका ने समस्या का समाधान पा लिया हो। उनके 'वसंत' नामक उपन्यास में दुख और भूलों के स्थान पर संतोष, आशा और आशीर्वचन की झलक मिलती है।

'जेनी' की सफलता के बाद 1912 में उन्होंने ए० सी० स्वर्स्टेड नामक एक चित्रकार से विवाह कर लिया और कुछ समय तक दाम्पत्य और मातृत्व दोनों का सफल निर्वाह करते हुए उपन्यास-लेखन में जुटी रहीं। सन् 1921 में वे रोमन कैथोलिक हो गईं और इसी कारण पति से उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। उन दिनों वे चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी का यूरोपीय इतिहास पढ़ रही थीं जब कि पाशविक बल धर्म पर मनमाने अत्याचार कर रहा था। सिग्रिड अनसेट का यह गम्भीर अध्ययन छह वर्ष तक चलता रहा। इस बीच उन्हें रोमन कैथोलिक धर्म के प्रति श्रद्धा हो गई और वह इतनी बढ़ी कि उन्होंने कैथोलिक धर्म की अनुयायिनी बनना पसन्द किया। यह बात उनके पति के विचारों के प्रतिकूल थी, तो उन्होंने सिग्रिड से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। वे बच्चों को लेकर लीलेहैमर नामक स्थान में पति से अलग रहने लगीं।

तब तक उनकी प्रसिद्धि काफी हो चुकी थी। धन भी जुटने लगा था। प्रकाशक निरन्तर उनकी पुस्तकों की मांग करने लगे थे। बच्चों के पालन-पोषण में वे पूरी तल्लीनता और सुख का अनुभव करती थीं इसलिए प्रारम्भ में लेखन की गति धीमी रही। पर क्रम कभी नहीं रुका; धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर लिखती चली गईं। लिखते समय अपने पात्रों के साथ भी वे वैसी ही तल्लीनता महसूस करती थीं, इसलिए वे चरित्र इतने जीवन्त बन पड़े हैं। उनके पात्रों की अवास्तविक सुख की तलाश और उनके मानसिक द्वन्द्व का चित्र पाठकों के मन पर खिंच जाता है।

उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में सूक्ष्म पर्यवेक्षण और वर्णन-शक्ति के बावजूद निराशा की गहरी छाप है। उनके कथानक भी युवक-युवतियों के मानसिक संघर्ष, बेमेल विवाह, असंतुष्ट दाम्पत्य आदि

पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं। जीवन के उच्च आदर्शों के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना उनमें कम है। पर बाद में मध्यकालीन नार्वे के कथानक लेकर उन्होंने जो सुप्रसिद्ध उपन्यास लिखे हैं, उनमें जीवन के निश्चित सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है। यद्यपि उनमें भी करुण रस की प्रधानता है, पर उनके पात्र अपने लौकिक क्लेश का शमन अध्यात्म में करते हुए अन्ततः आत्म-बलिदान में शान्ति अनुभव करते हैं। जहां किसी पात्र ने जातिवन्धन और नैतिक विधान का उल्लंघन किया, ग्रीक नाटकों की तरह वहां से उसकी अथक कष्ट-गाथा शुरू हुई और उसका अन्त हुआ पश्चात्ताप में या धार्मिक मठों और गिर्जों की क्रियात्मक सेवा के रूप में आत्मोत्सर्ग में। इस तरह मानवीय दुर्बलताओं के उदात्तीकरण या परिशोध द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना के प्रति उनकी निष्ठा परिलक्षित होती है।

इन कथानकों में सिग्रिड ने अपनी मातृभूमि के मध्यकालीन इतिहास को अपनी विशिष्ट शैली में चित्रित किया है जिसमें स्कें-डिनेवियन वीरगाथाओं वाली प्राचीन पद्धति और आधुनिक मनो-विश्लेषणात्मक पद्धति दोनों का सुन्दर सामंजस्य है। श्रमजीवियों, किसानों और अन्य मध्यवर्ती श्रेणी के लोगों के घरेलू और सामाजिक दृष्टि से सीमित जीवन का ऐसा सजीव चित्रण अन्यत्र बहुत कम मिलता है। पात्रों के मनोविश्लेषण के माध्यम से वातावरण और वातावरण के सूक्ष्म वर्णन के माध्यम से पात्रों के चरित्र को उभारने में उन्हें बहुत दक्षता प्राप्त है। कथा-गद्य के साथ तत्कालीन गीत और दार्शनिक प्रवचन जोड़कर उन्होंने उस वातावरण को इतना सजीव और मनोरंजक बनाया है कि बीसवीं सदी के पाठक को 5-6 सदी पूर्व के इन चरित्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करने में कोई कठिनाई नहीं होती और वह उसमें पूरा रस लेता है। यही सिग्रिड अनसेट की सफलता का प्रमुख कारण भी हो सकता है।

सिग्रिड अनसेट ने आधुनिक जीवन के उपन्यास लिखते-लिखते मध्यकालीन कथानक क्यों लिखने शुरू कर दिए? इसपर कई समीक्षकों ने आश्चर्य प्रकट किया है। पर प्राचीन कथानकों और

संस्कृति के प्रति प्रेम तो उन्हें पिता से विरासत में मिला था। उसे अपनी रचनाओं में ढाले बिना वे रह ही कैसे सकती थीं ? उन्होंने आधुनिक जीवन पर लिखे गए उपन्यासों में भी संदर्भ के अनुसार प्राचीन गीतों का समावेश किया है। उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में भी नार्वे के प्राचीन कथानक पर लिखा एक उपन्यास है, 'विगो जाट और विवाडस' जो 1909 में लिखा गया था। सम्राट आर्थर और उनके मुसाहिबों की कहानी 'किंग आर्थर' जो कि उनकी संसार-प्रसिद्ध रचनाओं में से एक है, 1915 की रचना है।

इसके बाद अनेक छुट-पुट कहानियों की रचना के साथ उन्होंने महिला-समस्याओं पर कई निबन्ध भी लिखे। कहानियां 'युअर फैट्स' नामक कहानी-संग्रह में संगृहीत हैं। 'साइन सेन' नामक एक कहानी 'नार्वे की सर्वोत्तम कहानियां' में संकलित है। और निबन्धों का संग्रह 'एक स्त्री का दृष्टिकोण' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। 'ए वूमेंस व्यू प्वाइंट' नाम के एक निबन्ध संग्रह से उनके व्यक्तिगत विचारों की अच्छी झलक मिलती है। स्त्रियों की समानता के प्रश्न पर वे लिखती हैं :

"स्त्रियों को समानता के अधिकार की आवश्यकता नहीं है। व्यक्तिगत रूप से मुझे घर का कार्य बड़ा आकर्षक और आनन्ददायक लगता है। नार्वे की अधिकांश लेखिकाएं गृहस्थी में जीवन जीती हैं और अपने हाथ से खाना पकाना पसन्द करती हैं। जिस स्त्री को खाद्य सामग्री से सौन्दर्यानुभूति नहीं मिलती, वह स्त्री नहीं है। मुझे तो घर से बाहर का काम कभी पसन्द नहीं आया। किसी ऐसे पुरुष की आज्ञा का पालन करने की अपेक्षा, जो मेरा परिचित नहीं है, मैं अपने पिता के बूटों पर पालिश करना अधिक पसन्द करती थी।"

इसी तरह एक अन्य लेख में उन्होंने लिखा है, "कामरेडपन की सारी बातें व्यर्थ हैं। ये व्यक्ति को परस्पर उत्तरदायित्व और कृतज्ञता की भावनाओं से वंचित कर उसका जीवन रूखेपन और खीझ से भर देती हैं और उसे उसकी प्राकृतिक स्थिति—जीविकोपार्जन और संतान-रक्षण—से दूर ले जाती हैं।"

इन निबन्धों में उन्होंने सत्य से दूर स्वाधीनता के ख्याली पुलावों

की खुलकर निन्दा की है। स्त्री की सर्वोत्तम भूमिका मां के रूप में है। यहीं वह पुरुष से श्रेष्ठ है। नैतिक दृष्टि से ऊंचा उठने की बात भी तभी पैदा होती है जबकि दूसरों के लिए जीने में जीवन की सार्थकता देखी जाए।

निबन्धों में अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त करने के अलावा अपने उपन्यासों और कहानियों का विषय भी उन्होंने मुख्यतया स्त्रीत्व को ही चुना है। 'क्रिस्टीन लेवरेंसडेटर' में यह स्त्रीत्व-चित्रण अपनी पराकाष्ठा और सिग्रिड की श्रेष्ठतम उपलब्धि के रूप में हुआ है। इसी उपन्यास ने सिग्रिड अनसेट का नाम 'नोबल पुरस्कार' के पूर्व ही विश्वविख्यात साहित्यकारों में प्रतिष्ठित किया था और उन्हें साधारण मध्यवित्त स्थिति से उठाकर धनवानों की श्रेणी में ला बैठाया था। कुछ ही दिनों में इस उपन्यास की 5 लाख प्रतियां बिक गई थीं।

'क्रिस्टीन लेवरेंसडेटर' तीन भागों में प्रकाशित रचना है, जिसे सिग्रिड की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया है। पहला भाग 'द ब्राइडल रीथ' तो आधुनिक नार्वे के महान कथा-साहित्य में सर्वोपरि है। चरित्र चित्रण और रचना-कौशल, दोनों दृष्टियों से यह रचना बहुत सुगठित है। आधुनिक साहित्य में ऐसे अंश बहुत कम मिलेंगे जो वैसा प्रभाव उत्पन्न करने और सौन्दर्यानुभूति जगाने में सफल हों जैसे कि इस उपन्यास में है। नायिका क्रिस्टीन लेवरेंसडेटर के बचपन, प्रौढ़ावस्था और अन्तिम दिनों के वर्णन के साथ उसकी मां रैनफ्रिड और पिता लावरेंस जार गल्फसन के चरित्र भी बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। लावरेंस जार गल्फसन नार्वे के प्रतिष्ठित गृहस्वामी हैं जो अपनी मध्यकालीन परम्परा को ठीक-ठीक निभाते हैं। क्रिश्चियन धर्म की दीक्षा पाकर वे और भी शालीन, धैर्यवान और कोमल हृदय हो गए हैं। उनका पत्नी के प्रति प्रेम, पुत्री और दामाद से व्यवहार एक आदर्श पुरुष की तरह है और उन्होंने एक योग्य व वीर पिता की भूमिका निवाही है। रैनफ्रिड (क्रिस्टीन की मां) भी अपनी बेटी का विवाह हो जाने के पश्चात् अपने दामाद को अपने जीवन के जो अनुभव सुनाती है उससे उसके उदात्त चरित्र की अच्छी झांकी मिलती है। अपने जीवन के छिपे

रहस्य, भावुकतावश उठाए कष्ट और फिर पति के लिए किए हुए बलिदान—सभी की कहानी उसमें है ।

उपन्यास में यात्राओं का, प्राकृतिक शोभा का, क्रिस्टीन और एर्लेण्ड के विवाह का और उस अवसर पर दिए जाने वाले भोज का वर्णन वहुत अच्छा वन पड़ा है । क्रिस्टीन के सौन्दर्य और उसके स्त्रीत्व तथा मातृत्व के गुणों का वर्णन भी काव्यात्मक परम्परा और अद्वितीय सुन्दरता के साथ किया गया है । एर्लेण्ड साहसी और आकर्षक युवक है लेकिन उसके जीवन में सन्तुलन और व्यवस्था का अभाव है । क्रिस्टीन पत्नी और मां दोनों की भूमिका समान रूप से निभाते हुए अपने अव्यवस्थित पति के प्रति भी उतना ही भक्ति भाव रखती है जितना कि अपने उदीयमान बच्चों के प्रति वात्सल्य-स्नेह । जब लड़के अपने जीवन में स्थापित हो जाते हैं और एर्लेण्ड की मृत्यु हो जाती है तो वह संसार के झंझटों से छुट्टी पाकर पर-सेवा के लिए एक मठ में रहने लगती है । समाज के हित में भारतीय वानप्रस्थ और संन्यास की-सी स्थितियों से सिग्रिड के उपन्यासों की ये स्थितियां कितनी मिलती हैं ! इस उपन्यास के अन्य दो भागों के नाम हैं, 'मैजेस्टी आफ हुसादी' तथा 'द क्रास' । कथानक तीनों को मिलाकर पूर्ण होता है ।

यद्यपि यह रचना सिग्रिड की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी गई है पर कुछ समीक्षकों की राय में इसके बाद की उनकी रचनाएं और भी अधिक प्रौढ़ हैं । 'मास्टर आफ हेस्टविकेन' नामक उनकी अगली रचना भी चार खण्डों में विभाजित है, क्रमशः 'दि ऐक्स,' 'दि स्नेक पिट,' 'इन दि वाइल्डरनेस' एवं 'दि सन एवेन्जर' । इसका नायक है, ओलेव ओण्डसन । उसकी स्त्री का नाम है, इनगन । इनगन का चरित्र क्रिस्टीन से विल्कुल भिन्न है । ओलेव समुद्री यात्राओं का शौकीन है । उसकी कहानी नार्वे के व्यापार, उद्योग की कहानी से जुड़ी हुई है । ओलेव एक साहसी और जीवन में सफल व्यक्ति है जिसके चरित्र को उभारने के लिए ईरिक नामक पात्र को उपस्थित किया गया है । ओलेव ने इनगन को उसके पूर्व पति टीट को मारकर प्राप्त किया था । ईरिक इनगन का टीट से पुत्र है । एक लम्बे समय तक इस दुर्बल और अर्ध-विक्षिप्त युवक ईरिक से ओलेव घृणा करता रहता है । फिर एक दिन

ओलेव के जीवन में ऐसा आता है कि जब वह स्वयं पक्षाघात से पीड़ित हो दूसरों का मोहताज हो जाता है। इस एकाकी और रुग्णावस्था में उसके हृदय में अपने उपेक्षित बेटे ईरिक के प्रति स्नेह जागने लगता है। यहीं ईरिक की सौतेली बहन सिसलिया का चरित्र उभरता है। सिसलिया, जो उसके पिता के अनुसार प्रभात के ओसकण की तरह शीतल और पवित्र थी, अपने पति जारण्ड और प्रेमी एस्लाक के त्रिकोण में फंसकर प्रेम, घृणा, कर्तव्य और वासना के भंवर में डोलती रह जाती है। अन्त में शोकाकुल हो उसका चेहरा भावहीन पत्थर-सा हो जाता है। वह न अपने बच्चों से हंस-बोल सकती है, न कोई उपयोगी कार्य कर सकती है। उसके नेत्रों की चमक एकदम बुझ-सी जाती है।

सिग्रिड अनसेट के उपन्यासों में इसी तरह गृहस्वामी, स्त्री, बच्चे, नौकर, मेहमान सभी को लेकर सुन्दर गृहस्थ जीवन का ताना-बाना बुना गया है जिसमें प्रत्येक चरित्र अपना अलग महत्त्व रखते हुए भी अन्य चरित्रों को उभारने का कारण बन पारिवारिक जीवन को उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करता है। सभी पात्र समुदाय भावना से बंधे हैं और परिवार व समाज की भलाई के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। रचनाओं में घटना-विकास धीरे-धीरे होता है और बहुत ही सहज रूप में पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए। दैनिक जीवन की बारीकियों और प्राकृतिक शोभा के वर्णन बड़े मोहक हैं। ओलेव जब समुद्र-यात्रा से लौटता है तो घर की छोटी से छोटी बात में आनन्द ले सुख प्राप्त करता है।

इन उपन्यासों में आध्यात्मिक जीवन और गिर्जाघरों को भी खूब महत्त्व दिया गया है। लेखिका पाप-शोधन के लिए ईश्वर की शरण में जाने और दीन-दुखियों की सेवा में जीवन अर्पित करने में विश्वास रखती है। साथ ही उसका यह विश्वास भी साफ झलकता है कि संसार में निष्पाप जीवन हो ही नहीं सकता। उन्होंने ईरिक के मुंह से एक जगह यह कहलवाया है कि बिना कोई भी पाप किए शायद कोई भी व्यक्ति जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उनकी 'प्रतिशोधक का पुत्र' रचना मानवीय भूल, कष्ट-सहन, पारिवारिक प्रेम और क्षमा-

शीलता की कहानी है। पर सभी में पीड़ा का परिमार्जन उदात्तता में या आध्यात्मिक शान्ति और जनसेवा में कर जीवन की सार्थकता ढूंढ़ने का समानान्तर प्रयत्न है।

सिग्रिड अनसेट के उपन्यासों की सफलता इसमें भी है कि बीसवीं सदी के पाठक उनकी 6-7 सदी पूर्व की कहानियों और तत्कालीन लोगों की भावनाओं-समस्याओं को समझने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करते। उनकी रुचि न केवल बराबर बनी रहती है, घटना-क्रम के विकास के साथ विकसित भी होती रहती है। यह सफलता अध्यवसाय की सफलता भी कही जा सकती है। सिग्रिड अनसेट ने पन्द्रह वर्षों तक मध्यकालीन इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद ही इस दिशा में लेखनी उठाई थी। तब तक वे समसामयिक सामाजिक उपन्यास ही लिखती रही थीं। ऐतिहासिक चरित्रों के तथ्यपरक और भावप्रवण चित्रण के साथ तत्कालीन वातावरण का दिग्दर्शन उनके इन उपन्यासों की विशेषता है और इसी विशेषता ने उन्हें बीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ लेखकों की पंक्ति में ला बिठाया है।

उनकी आधुनिक काल के सन्दर्भ में लिखी रचनाओं में 'दि वाइल्ड आर्किड' तथा 'दि बर्निंग बुश' के नाम उल्लेखनीय हैं।

अनसेट को अपने ग्राम, अपने घर और बच्चों से बहुत प्रेम था। वे हमेशा घर पर ही रहती थीं और बहुत कम बाहर निकलती थीं। उनके आदर्श भारतीय गृहिणी के आदर्शों से मिलते-जुलते हैं। नोबल पुरस्कार की सूचना पत्रों में प्रकाशित होते ही जब विभिन्न पत्रों के संवाददाता उनके घर पर जा पहुंचे तो वे उस समय अपने बच्चों को सुलाने जा रही थीं। इस कार्य में कोई व्यवधान उन्हें पसन्द न था। उन्होंने पत्र-संवाददाताओं से बड़ी सरलता और नम्रता से कहा, "मैं आप लोगों के कष्ट उठाकर यहां आने का कारण समझती हूं। अभी-अभी केबिल द्वारा मुझे सूचना मिल गई है कि मुझे इस वर्ष का नोबल पुरस्कार दिया गया है। यह मेरे लिए सौभाग्य व प्रसन्नता का विषय है। पर इससे भी अधिक प्रसन्नता मुझे अपने बच्चों के साथ रहने में मिलती है। यह समय मेरे बच्चों के सोने का समय है, दर्शन, अध्यात्म या साहित्य-चर्चा करने का नहीं। अतः मैं क्षमा चाहती हूं।"

सवेरे तड़के उठकर वे लिखती थीं। फिर घर का काम और बच्चों के साथ समय। फिर शाम को बगीचे में रंग-बिरंगे फूलों के साथ। अपनी पुस्तकों की आय बढ़ने पर उन्होंने अपना निजी घर भी नार्वे के मध्यकालीन महलों के नमूने का बनवाया था। उन्हें उस माहौल से कुछ इतना प्रेम हो गया था कि घर की सज्जा, वेशभूषा सभी में स्वयं को उसी रंग में रंग डालना चाहती थीं।

सिग्रिड अनसेट को नोबल पुरस्कार प्रदान करते समय स्वीडिश ऐकेडेमी ने कहा था :

"विशेष रूप से नार्वे के मध्यकालीन जीवन के सशक्त चित्रण के लिए यह पुरस्कार दिया जा रहा है।"

प्रमुख कृतियां

1. क्रिस्टीन लेवरेंसडेटर (तीन भाग)
   (क) दि ब्राइडल रीथ, (ख) दि मेजेस्टी आफ हुसादी, (ग) दि क्रास
2. मास्टर आफ हेस्टविकेन (चार भाग)
   (क) दि ऐक्स, (ख) दि स्नेक पिट, (ग) इन दि वाइल्डरनेस, (घ) दि सन एवेन्जर
3. जेनी
4. हैप्पी एज
5. वाइज़ वरजिन्स
6. ए वीमेंस व्यूप्वाइंट
7. दि मिस्ट्रेस आफ हसबी
8. गुन्नार्स डॉटर
9. इमेजेज़ इन ए मिरर
10. दि वाइल्ड आर्किड
11. दि बर्निंग बुश
12. मैडम डोरोथी
13. दि फेथफुल वाइफ
14. दि लांगेस्ट इयर्स
15. मैन, वूमैन एंड प्लेसेज़

16. स्टेजेज़ आन द रोड
17. इडा इलिज़ाबेथ
18. सागा आफ सेंट्स
19. किंग आर्थर
20. यूअर फैंट्स

पर्ल बक

(1892-1973)

साहित्य में 1938 का नोबल पुरस्कार प्रख्यात लेखिका पर्ल बक को मिला। इस साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित होनेवाली आप अमेरिका की प्रथम महिला थीं, जो 80 वर्ष की आयु में भी उद्देश्य-पूर्ण लेखन और समाजसेवा दोनों कार्यों में जुटी हुई थीं।

"मैं एक अजीब किस्म की नारी हूं, जो लिखे बिना सुखी नहीं रह सकती।" कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के पत्रकारिता स्कूल में भाषण देते समय अपने सम्बन्ध में यह वाक्य बोलने वाली पर्ल एस० बक सच-मुच एक ऐसी धुनी लेखिका थीं जिन्होंने वृद्धावस्था में अपनी आत्म-कथा के अन्त में भी यही लिखा—"कोरे कागज़ों का एक दस्ता मेरी मेज़ पर रखा हुआ पुस्तक की प्रतीक्षा कर रहा है। मैं एक लेखिका हूं, अत: नई पुस्तक लिखने के लिए अपना पेन उठा लेती हूं।"

'मैं लेखिका हूं और उद्देश्यपूर्ण लेखन ही मेरे जीवन का ध्येय है'—यह सूत्र-वाक्य हर घड़ी पर्ल बक के सम्मुख रहा था, उनमें प्रेरणा और उत्साह भरता रहा था तथा जीवनपर्यन्त उन्हें व्यस्त-प्रवृत्त रखता रहा।

पर्ल एस० बक बीसवीं सदी की एक ऐसी आदर्श चरित्र और महान व्यक्तित्व की धनी महिला थीं जिसपर संसार की हर नारी गर्व कर सकती है। उनका सम्पूर्ण लेखन पूर्व और पश्चिम को जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप में है। मानव और मानव के बीच की खाई को पाटने का, विश्व-बंधुत्व की भावना को फैलाने का और मनुष्य में सोई सद्भावना को जगाने का जितना काम अकेली पर्ल बक ने किया है, उतना शायद किसी भी एक साहित्यकार ने नहीं। उनका अपना व्यक्तित्व भी पूर्व-पश्चिम दोनों से इतना अधिक जुड़ा था कि उन्हें अमेरिकी उपन्यासकार कहें या चीनी, इसपर भी मतभेद है।

पर्ल एस० बक अमेरिका में जन्मीं, चीन में पलीं, रहीं और फिर

अपने देश अमेरिका में आ बसीं। पर अमेरिकी होने और अमेरिका में रहने पर भी वे स्वयं को एशिया के ही अधिक निकट पाती थीं। अभी हाल के एक समाचार के अनुसार पर्ल बक ने अफ्रेशियाई अनाथ बच्चों के लिए सीलोन में एक फाउंडेशन की स्थापना की थी। किन्तु नागरिक वे स्वयं को न चीन की मानती थीं, न अमेरिका की। अपने-आपको विश्व की नागरिक कहती थीं और विश्व-नागरिकता, विश्व की एक सामान्य संस्कृति में विश्वास रखती थीं। इसी संस्कृति के विकास के लिए मनुष्य की सामान्य समझ के विकास में उन्होंने अपना पूरा जीवन लगा दिया।

उनके विचार में, "पूर्व और पश्चिम के लोग अब नये सम्बन्धों के लिए विवश हैं। नये वैज्ञानिक ज्ञान और उससे उत्पन्न विचार-धारा से हम एक आश्चर्यजनक नई संस्कृति का निर्माण कर सकते हैं। आज कोई भी संस्कृति युग की मांग के अनुरूप नहीं है। हमें दोनों में से एक बात का चुनाव करना है—या तो हम दृढ़ता से एक सामान्य विश्व-संस्कृति की दिशा में बढ़ें या फिर अपनी छोटी-छोटी संकीर्ण संस्कृतियों को बचाए रखने के प्रयत्न में नष्ट हो जाएं। हम हमेशा संकरी गलियों में बंटे, कटे हुए रहते आए हैं क्योंकि और कोई रास्ता न था, मार्गदर्शन न था। पर अब हम उस स्थिति में पहुंच गए हैं जहां सीमाएं समाप्त हो गई हैं। अब हम इस स्थिति से पीछे नहीं लौट सकते। आगे बढ़ने के सिवा कोई और चारा नहीं है। कृत्रिम सीमाएं खड़ी करेंगे तो इसका अर्थ विश्व के विनाश का आवाहन करना होगा।"

पर्ल एस० बक चाहती थीं कि कलाकार अपनी ज़िम्मेदारियों को समझें। बदलती स्थितियों से न तो उन्हें भयभीत होना चाहिए, न निराश। साहित्यकार ही जीवन के तथ्यों की खोज कर संसार को नई राह दिखा सकता है। मानव-जाति की व्याख्या करना और एक उन्नत सुखी समाज की कल्पना ही नहीं, निर्माण करना भी उसीका काम है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य मनुष्य की सामान्य समझ के विकास से ही सम्पन्न होगा। मनुष्य-मनुष्य में भेद मिटाकर ही सम्भव होगा।

स्वयं पर्ल एस० बक ने इस ज़िम्मेदारी को बखूबी समझा और



पर्ल बक
1938 में साहित्य पर नोबल पुरस्कार

निभाया। उनका सम्पूर्ण लेखन एक उद्देश्यपूर्ण लेखन है और यही उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि भी है।

श्रीमती पर्ल एस० बक अमेरिकी थीं पर अमेरिकी लोगों ने कभी भी उन्हें अपने साहित्यकार के रूप में स्वीकार नहीं किया। अपने देश में उन्हें अपेक्षित स्नेह और स्वागत नहीं प्राप्त हो सका तो इसका कारण यही था कि उनका अधिकांश लेखन चीन पर आधारित है। चीन में उन्होंने अपना बचपन बिताया और बाद के कुछ वर्ष अमेरिका में, पर तीस साल से अधिक उनके दिमाग पर चीन ही छाया रहा। उनकी विश्वविख्यात कथाकृति 'द गुड अर्थ' भी चीनी पृष्ठभूमि पर ही लिखी हुई है। 1931 में इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही सारी दुनिया में इसकी चर्चा हुई। विश्व की सभी पुस्तकों में सर्वाधिक बिक्री उसकी हुई और पर्ल एस० बक को संसार की एक असाधारण उपन्यास-कर्त्री के रूप में मान्यता इसी पुस्तक ने दिलाई। 1932 में इसी उपन्यास पर पर्ल एस० बक को सुप्रसिद्ध 'पुलित्ज़र' पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। इस उपन्यास पर एक फिल्म बन चुकी है और संसार की बीस भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

'द गुड अर्थ' में एक चीनी किसान वांग लुंग और उसके अपनी मातृभूमि के प्रति अनूठे प्रेम की कहानी है। यह कहानी है एक सीधे-सादे सच्चे किसान की, उसकी पतिपरायणा पत्नी की, जो अपने पति के साथ गरीबी, अकाल सब झेलने को प्रस्तुत है और उसके तीन बेटों की, जो अपनी मातृभूमि को प्यार नहीं करते। यह उपन्यास इस सदी के दूसरे-तीसरे दशक के समाज का एक जीवन्त चित्र है, जिसमें पुराना ढांचा टूट रहा था। तत्कालीन चीनी किसानों के जीवन का ऐसा वास्तविक व मार्मिक वर्णन अन्य किसी चीनी लेखक की पुस्तक में भी नहीं मिलता।

कुल मिलाकर उन्होंने 40 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से 17-18 उपन्यास हैं और 23 बच्चों के लिए मनोरंजक कहानियों की छोटी-छोटी पुस्तकें। सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर उनके कुछ निबन्ध-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं और चीन के सबसे अधिक प्रसिद्ध उपन्यास 'शू-हुई-चुआन' का भी उन्होंने 'आल मैन आर ब्रदर्स'

नाम से अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद किया। इस बृहद् अनुवाद में उन्हें साढ़े चार साल तक कठोर परिश्रम करना पड़ा था। इसीसे उनकी कर्मठता और परिश्रमशीलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

पर्ल एस० बक का जन्म हिब्सबोरो, वेस्ट वर्जीनिया में 26 जून, 1892 में हुआ था। माता-पिता चीन में अमेरिकी मिशनरी थे। बालिका पर्ल पांच महीने की आयु में ही अपने माता-पिता के साथ चीन आ गई थी। उनका बचपन अमेरिकी जीवन की तड़क-भड़क से दूर चीन के किसान परिवारों के बीच व्यतीत हुआ। उन्हें अपनी बूढ़ी चीनी नर्स से बौद्ध और ताओ धर्म की अनेक आश्चर्यजनक कहानियां सुनने को मिलीं। अपने बचपन के संस्मरणों में वे लिखती हैं, "चिंग कांग नगर में यांगत्सी नदी के समीप एक पहाड़ी के शिखर पर हमारा छोटा-सा बंगला था। वहां से नदी का विस्तार और प्रकृति की मनोरम छटा दूर तक दृष्टिगोचर होती थी। पर्वतों की ऊंची-नीची श्रेणियां, सुरम्य घाटियां, उर्वरा भूमि पर फूलों का बिखरा सौरभ और आकाश में दूर तक फैली हुई नीलिमा, हरे-भरे बांसों के झुंड और पक्षियों की चहचहाहट वातावरण में एक विचित्र मस्ती और उन्माद भर देती थीं। पहाड़ी के नीचे एक विशाल मन्दिर था, जिसके द्वार पर एक चिड़चिड़े स्वभाव वाला बूढ़ा पुजारी बैठा रहता था। मैं उस पुजारी से बहुत डरती थी।"

बालिका पर्ल पर इस प्राकृतिक वातावरण और चीनी किसानों के सीधे-सादे जीवन का गहरा प्रभाव पड़ा। बूढ़ी चीनी नर्स द्वारा सुनाए गए आश्चर्यजनक किस्से-कहानियों का भी उसके भीतर के कथाकार को गढ़ने में काफी हाथ रहा। अपने संस्मरणों में उन्होंने इन जादूभरी देव-दानवों, स्वर्ग-नरक की कहानियों के निष्कर्षों को घंटों हरे बांसों के झुरमुट में बैठकर सोचने का उल्लेख किया है। मां से उन्हें अपने देश अमेरिका के वीरों, योद्धाओं की कहानियां सुनने को मिलीं और नर्स से मनोरंजक व शिक्षाप्रद लोककथाएं। दोनों के सम्मिलित प्रभाव ने उनमें विश्वजनीन भावनाओं का संचार किया और उनके मानस को दीक्षित कर उनके सर्वप्रिय कथाकार-व्यक्तित्व का निर्माण किया। यद्यपि अपनी मां और नर्स दोनों के प्रभाव को

उन्होंने स्वीकार किया है पर अपनी स्नेहमयी नर्स की छाया में प्रायः एकाकिनी रूप में पलने-बढ़ने की अपनी बिखरी स्मृतियों को उन्होंने बड़े ही सरस और मार्मिक ढंग से अपने संस्मरणों में पिरोया है।

पन्द्रह साल तक मिस पर्ल को मां ने घर पर ही शिक्षा दी। शब्दों की सामर्थ्य और भाषा की सुन्दरता की ओर उनका ध्यान मां ने ही दिलाया। फिर उन्हें शंघाई के एक स्कूल में भर्ती करा दिया गया। सत्रह वर्ष की आयु में वे उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका भेज दी गईं। वहां उन्होंने लिच वर्ग (विरजीना) के रेण्डोल्फ मेकान वीमेंस कालेज से 1914 में स्नातक की उपाधि ली। उसके बाद वे चीन लौट आईं। यद्यपि मां ने बार-बार अमेरिका को अपना घर मानने की बात उनके मन में बैठाई थी, पर वहां उनका मन न लगा। अमेरिकी कालेजों का उच्छृंखल वातावरण उन्हें बिल्कुल नहीं भाया। वे अपनी सहपाठिनियों से अलग-अलग रहने लगीं। प्रायः अमेरिकी लड़कियां उन्हें चीन से आई पिछड़ी लड़की समझकर हेय दृष्टि से देखतीं और नाक-भौं सिकोड़ती थीं। यह बात उन्हें भीतर तक चीर जाती और वे उपेक्षित, पिछड़े चीनियों के प्रति और भी झुकने लगतीं। लेकिन कक्षा में सबसे अलग और गम्भीर रहने के बावजूद अपनी प्रतिभा और लेखनी के बल पर शीघ्र ही वे कालेज में लोकप्रिय हो गईं। प्रति मास कालेज-पत्रिका में उनके लेख छपते। दो बार उन्हें पुरस्कृत भी किया गया। इससे कालेज का नेतृत्व उनके हाथ में आ गया और चिढ़ाने वाली लड़कियां मुंह देखती रह गईं।

चीन लौटने के बाद दो वर्ष उन्हें अपनी रोगिणी मां की परिचर्या में बिताने पड़े। फिर जॉन एल० बक नामक एक अमेरिकी मिशनरी युवक से विवाह कर वे उत्तरी चीन में चली गईं। वहां पांच वर्ष तक रहकर उन्होंने चीनी ग्रामीण जन-जीवन का और भी निकट से अध्ययन किया। उन्होंने अकाल-जनित भूख, गरीबी, डकैतों से भय और असुरक्षा का प्रत्यक्ष अनुभव किया, जिससे उनके मन में उन गरीब चीनियों के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ी। तभी उन्हें लगने लगा कि इन अनुभूतियों को वे कभी न कभी लिखेंगी अवश्य। उन दिनों तो अपनी दो नन्हीं बच्चियों के पालन-पोषण और घर-गृहस्थी के कार्य में

व्यस्त रहने के कारण इतना अवकाश उन्हें नहीं मिल पाता था।

इसके बाद बक-दम्पती नानकिंग चले आए। यहां का नागरिक जीवन उस जीवन से बिल्कुल भिन्न था। यहां वे नानकिंग यूनिवर्सिटी तथा बाद में चुंगयांग यूनिवर्सिटी में कुछ वर्षों तक अंग्रेज़ी की प्रोफेसर रहीं। इसी अवधि में उनका लेखन प्रारम्भ हुआ। 1922 में उन्होंने अपना पहला लेख एटलांटिक मासिक पत्र में प्रकाशनार्थ भेजा, जो तुरन्त स्वीकृति हो गया। 'इन चाइना टू' शीर्षक से इस लेख का ऐसा प्रभाव पड़ा कि फिर दूसरे सम्पादक भी उनसे रचनाएं मांगने लगे और सिलसिला चल पड़ा। उस समय की परम्परानुसार पर्ल एस० बक ने रोमानी कल्पनाओं पर आधारित रंगीन लेख नहीं लिखे, बल्कि उससे हटकर उनके लेखों में नित्य-प्रति के चीनी जीवन की यथार्थ और मार्मिक झलक मिलती थी। 1924 में अमेरिका के एक प्रमुख पत्र 'नेशन' में 'चीनी विद्यार्थियों का मस्तिष्क' शीर्षक से जो लेख प्रकाशित हुआ, उसकी भी व्यापक प्रतिक्रिया हुई और अमेरिका, चीन दोनों में उनकी ख्याति बढ़ी। फिर 1925 में वे फिर एक वर्ष के लिए अमेरिका गईं और वहां से स्नातकोत्तर उपाधि लेकर लौटीं। उनका शोधविषय था—'चीन और पश्चिम', जिसपर 'ल्यौरा मसेजर' पुरस्कार भी उन्हें मिला।

श्रीमती पर्ल एस० बक का प्रथम उपन्यास 'ईस्ट विंड, वेस्ट विंड' 1930 में प्रकाशित हुआ था। इसका प्लाट उन्होंने चीन से अमेरिका जाते हुए यात्रा के दौरान अपने जहाज़ के एकान्त कमरे में बैठकर सोचा था। अंग्रेज़ी जहाज़ के यात्री औपचारिकता में बंधे एक-दूसरे से कम से कम बोलते थे, जब कि एशिया में उन्हें खुला वातावरण मिला था। यही विषय उनके प्रथम उपन्यास की प्रेरणा बना। इस उपन्यास के लेखन-प्रकाशन की कहानी भी बड़ी मार्मिक है। 1926 में उन्होंने इसे लिखना प्रारम्भ किया था। मार्च, 1927 में नानकिंग में राष्ट्रीय सैनिकों ने विदेशी परिवारों की लूट-मार शुरू कर दी। श्रीमती पर्ल एस० बक का घर जला दिया गया, जिसमें उनके लगभग सम्पूर्ण उपन्यास की पाण्डुलिपि भी जल-कर राख हो गई। आक्रमण से कुछ ही मिनट पूर्व श्रीमती बक अपनी

दो अबोध बच्चियों और पति के साथ घर से भाग निकलीं व इस तरह बाल-बाल बचकर तेरह घंटों तक एक चीनी बुढ़िया के मकान के तहखाने में छुपी रहीं। इस बीच सौभाग्य से उनकी छोटी बच्ची नहीं रोई, वरना न जाने क्या होता। बाद में 'एशिया मैगज़ीन' को अपने अनुभव लिखते हुए उन्होंने लिखा, "अपने श्वेत रंग के कारण ही हमारा यह मृत्यु से साक्षात्कार हुआ था। इसका भयंकर अनुभव मुझे सदा याद रहेगा। जान बचने का कारण भी मेरी अपने चीनी मित्रों से सहानुभूति व बदले में उनकी सहायता ही था।"

इस घटना के बाद कुछ दिनों के लिए पर्ल-दम्पती जापान चले गए। लौटने पर फिर 1930 में 'ईस्ट विंड, वेस्ट विंड' तथा 1931 में 'द गुड अर्थ' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। 'द गुड अर्थ' के प्रकाशन ने उन्हें विश्वव्यापी ख्याति दिला दी। नानकिंग व चुंगयांग यूनिवर्सिटी में उन्होंने दस वर्ष तक अध्यापन-कार्य किया। इसी बीच 1932 में उन्होंने अपने एक भाषण और लेख द्वारा विदेशी मिशनरी पादरियों के काम की कड़ी आलोचना की। फलस्वरूप विदेशी मिशनों के बोर्ड से उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। फिर सन् 1934 में श्रीमती पर्ल एस० बक अमेरिका चली गईं और अपनी रचनाओं के प्रकाशक 'जॉन डे कम्पनी' में काम करने लगीं।

1935 में उन्होंने मिस्टर बक से सम्बन्ध-विच्छेद कर 'एशिया मैगज़ीन' के प्रधान सम्पादक व जॉन डे कम्पनी के प्रेसीडेंट श्री रिचर्ड जे० वाल्श से विवाह कर लिया और पेनसिल्वेनिया में चार सौ एक ज़मीन लेकर नागरिक बस्ती से दूर अपना नया घर बसा लिया। जिन्हें उनके इस गांव वाले घर में जाने का सौभाग्य मिला है वे जानते हैं कि श्रीमती बक केवल कुशल लेखिका ही नहीं, एक सहृदय समाजसेविका भी थीं। यहां उन्होंने विभिन्न राष्ट्रीयता, खून, जाति व रंग के कुछ अनाथ बालक-बालिकाओं को गोद ले रखा था और उनकी मां बन उन्हें स्नेह और आश्रय प्रदान करती थीं। 1948 में इस आश्रम-गृह की नींव रख उन्होंने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण और विश्व-संस्कृति के सपने को एक छोटे रूप में साकार कर दिया। उनके इस सेवा-कार्य के पीछे मूल भावना उनके इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ही

रही कि मानव मूल रूप से समान हैं—पूर्व हो या पश्चिम और गोरा हो या काला ।

अमेरिका में स्थायी निवास के बाद भी उन्होंने अपने मकान की सजावट चीनी ढंग से कर रखी थी और चीनी भोजन भी पसन्द करती थीं। उनके इस चीन-प्रेम और समता में विश्वास के कारण कई लोग उन्हें साम्यवाद की समर्थक समझते थे । पर यह उनका भ्रम था। श्रीमती बक न साम्यवादी थीं, न साम्यवादी चीन से उनको कुछ लगाव था, बल्कि वे इसकी आलोचक थीं। उन्हें तो चीन की प्राचीन संस्कृति से प्यार था । उनके विचार में साम्यवादी चीन द्वारा अपनी प्राचीन समृद्ध संस्कृति का विनाश उसकी सही दृष्टि नहीं थी । किसी भी देश का निर्माण, जो परम्पराओं से कटकर होगा, वह स्वस्थ नहीं हो सकता ।

श्रीमती पर्ल एस० बक मात्र एक उपन्यास-लेखिका ही नहीं, वे स्वयं में एक संस्था थीं—मानववादी संस्था। चीन-अमेरिका, पूर्व-पश्चिम को जोड़ने वाली एक सांस्कृतिक कड़ी के रूप में उन्हें याद किया जाता है और सदा याद किया जाता रहेगा । वे अपने द्वारा संस्थापित 'पूर्व-पश्चिम संघ' की अध्यक्षा थीं और वृद्धावस्था में भी अपनी कृतियों तथा इस संस्था द्वारा एक सामान्य विश्व-संस्कृति के निर्माण में रत थीं। इसके बाहर कुछ भी देखने या सोचने की उन्हें फुर्सत नहीं थी । वे एक लम्बे समय तक जान सेजेस के छद्म नाम से अमरीकी जीवन का भी चित्रण करती रही थीं और उन्हें इस चित्रण में भी उतनी ही सफलता मिली, जितनी कि चीनी जन-जीवन के चित्रण में ।

उन्हें पुरस्कार देते समय स्वीडिश ऐकेडेमी ने कहा, "चीन के किसानों के यथार्थ जीवन के महाकाव्य जैसे चित्रण के लिए इन्हें यह पुरस्कार दिया जा रहा है ।"

6 मार्च 1973 के दिन अमेरिका में अपने निवास-स्थान डेनबी (वरमाउंट) में इस विश्व-विख्यात लेखिका का निधन हो गया ।

प्रमुख कृतियां

1. ईस्ट विंड, वेस्ट विंड
2. दि गुड अर्थ
3. सन्स
4. दि यंग रेवोल्यूशनिस्ट
5. दि मदर
6. ए हाउस डिवाइडेड
7. दि पैट्रियाट
8. अदर गॉड्स
9. दिस प्राउड हार्ट
10. टुडे एंड फार एवर
11. आफ मैन एंड वीमैन
12. फार एण्ड नियर
13. दि प्रामिज़
14. गाड्स मेन
15. हिडेन फ्लावर
16. कम माई बिलवेड
17. पैवीलियन आफ वीमैन
18. ड्रैगन-सीड
19. किनफोक
20. पोर्ट्रेट आफ ए मैरिज
21. एग्ज़ाइल
22. फाइटिंग एंजिल
23. दि फर्स्ट वाइफ

गेब्रीला मिस्त्राल

(1889-1957)

1945 का साहित्य में नोबल पुरस्कार चिली की कवयित्री गेब्रीला मिस्त्राल को मिला। दक्षिण अमेरिका की यह पहली साहित्यकार थीं जिन्हें इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया। चिली दक्षिण अमेरिका का एक भाग है। सोलहवीं शताब्दी में यह स्पेन का उपनिवेश हो गया था, फिर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वाधीन हुआ। दक्षिण अमेरिका के पश्चिम में प्रशान्त महासागर के किनारे पर स्थित चिली प्रदेश में आज भी स्पेनिश प्रभाव कम नहीं है। यहां स्पेनिश भाषा ही बोली जाती है।

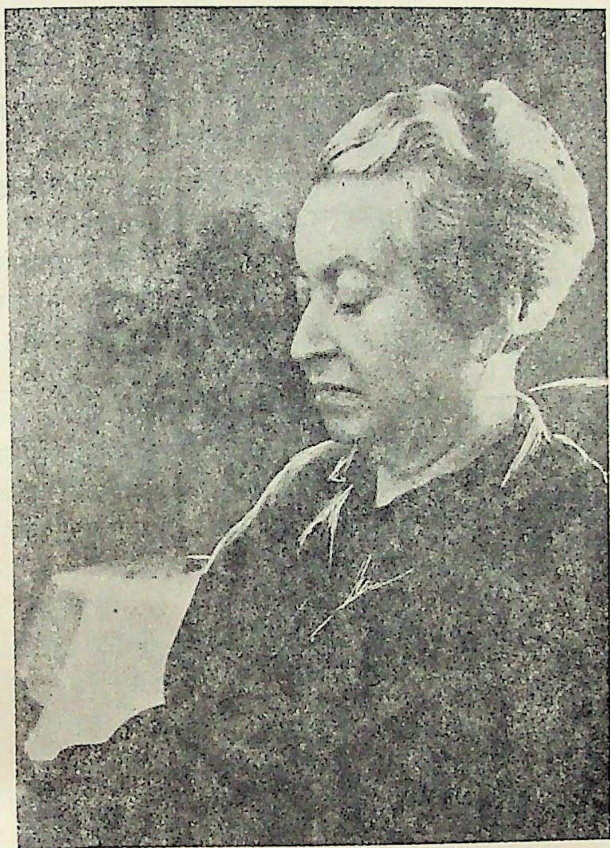
गेब्रीला मिस्त्राल के गीतिकाव्य लेटिन अमेरिका-निवासियों में एक लम्बे समय तक आदर्श प्रेरणा भरते रहे हैं। पर बाहरी दुनिया इनसे परिचित न थी। जब एक स्वीडन कवि जाल्मर गुलबर्ग ने मिस्त्राल की कविताओं का स्वीडिश अनुवाद प्रस्तुत किया तो इनका भाग्य जाग उठा। यद्यपि इनकी रचनाओं की संख्या अधिक नहीं है पर अधिकांश कविताएं बहुत शक्तिशाली हैं। इनमें एक संवेदनशील हृदय की कोमलता और शक्ति, भावविह्वलता और आवेश, ममता और विद्रोह—सभी स्थितियां कलात्मक ढंग से उजागर हुई हैं। जहां अधिकांश लेटिन अमेरिकी कवि और लेखक अमेरिका और यूरोप के अंधानुसरण में अपनी प्रतिभा और वाणी को खर्च कर रहे हैं वहां गेब्रीला मिस्त्राल की रचनाएं इस प्रभाव से सर्वथा मुक्त हैं। 'नोबल, द मैन एण्ड हिज़ प्राइज़ेज़' के लेखक ऐंडर्स आस्टलिंग के अनुसार, "आप गेब्रीला मिस्त्राल की वाणी में इस सुदूर देश की विश्वसनीय आवाज़ सुन सकते हैं।"

गेब्रीला मिस्त्राल का जन्म 7 अप्रैल, 1889 को चिली के विकुना नामक स्थान में हुआ। पिता जेरोनिका गाडाय विलानुएवा गांव के

अध्यापक थे। अध्यापन के साथ वे शौकिया कविताएं भी लिखते थे जिन्हें यदा-कदा विशेष समारोहों में सुनाया करते थे। गेब्रीला की मां का नाम पेट्रोलिना अल्कायागा था। प्रारम्भिक शिक्षा गांव के स्कूल में लेकर पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही गेब्रीला मिस्त्राल गरीब बच्चों को पढ़ाने लगी थीं। कुछ वर्ष बाद कालेज में अपनी शिक्षा आगे बढ़ाकर उन्होंने स्कूल की नौकरी की। फिर तेईस वर्ष की आयु में स्कूल-इंस्पेक्ट्रेस बन गईं। इसके बाद 1918 से 1922 तक स्पेनिश भाषा की प्रोफेसर और डायरेक्टर रहीं। अपने क्षेत्र में उन्होंने लाइब्रेरी का भी संगठन किया। सन् 1931 में अमेरिका के बर्नार्ड कालेज में स्पेनिश के साहित्य और इतिहास की प्रोफेसर होकर गईं। चिली की काउंसिलर के नाते उन्होंने मैड्रिड, लिस्बन, जेनेवा और नेपल्स का दौरा भी किया था। सन् 1957 में 68 वर्ष की आयु में हैम्पस्टीड (न्यूयार्क) में उनका देहान्त हो गया।

जिस रचना पर उन्हें नोबल पुरस्कार मिला था, उसका नाम है—'सानेट्स आफ डेथ' (मृत्यु-गीत)। पुरस्कार 1945 में दिया गया था पर यह रचना 1914 में प्रकाशित होते ही सुविख्यात हो गई थी। उनकी अगली काव्य रचना 'डोलोक' भी वैसी ही मार्मिक और दुखांत रचना है, जिसका प्रकाशन 1922 में हुआ था। इसके बाद 1924 में 'टर्नुरा' छपी, जिसमें मानव-हृदय की विशालता का दिग्दर्शन कराया गया है। इन सभी ने उन्हें प्रसिद्धि दी, पर छद्म नाम से।

गेब्रीला मिस्त्राल का असली नाम था—लुसीला गोडाय वाई अल्कायागा। छोटी उम्र से ही उन्होंने कविताएं लिखना आरम्भ कर दिया था। उनकी प्रथम काव्य रचना 1907 में 'ला वाज़ डे एलगुई' नाम से प्रकाशित हुई, जो एक दुखद प्रेम-प्रसंग पर आधारित है। इस प्रथम रचना ने ही उन्हें जनता के सामने ला दिया था। इसके बाद 'सानेट्स आफ डेथ' की तीन कविताओं पर उन्हें एक पुरस्कार भी मिला था। पर ये रचनाएं अपने असली नाम से नहीं, उपनाम या छद्मनाम से भेजी गई थीं। अपने दो प्रिय कवियों—गेब्रिअल डिएन्जियो और फ्रेडरिक मिस्त्राल के नामों के पहले व पिछले शब्दों को मिलाकर



ग्रेबीला मिस्त्राल
1945 में साहित्य पर नोबल पुरस्कार

उन्होंने अपना नाम गेब्रीला मिस्त्राल रख लिया था। यही नाम प्रसिद्ध हुआ।

गेब्रीला मिस्त्राल ने बच्चों के लिए भी लिखा है। इन रचनाओं में वात्सल्य और कल्पनाशीलता का अद्‌भुत मिश्रण है। बच्चों और दलितों के प्रति गेब्रीला की सभी रचनाओं में गहरी सहानुभूति मिलती है। उनकी कविता सरल और भावनाओं से ओत-प्रोत है, साथ ही उसमें एक दृढ़ इच्छाशक्ति के भी दर्शन होते हैं। उनकी गद्य रचनाओं पर उनके अपने संवेदनशील किन्तु सशक्त व्यक्तित्व की गहरी छाप है। उनकी चुनी हुई रचनाओं का विशाल चिलियन संस्करण 1954 में सात जिल्दों में प्रकाशित किया गया था। न्यूयार्क की स्पेनिश इंस्टीट्यूट द्वारा भी उनकी एक पुस्तक 'डेसोलासियों' प्रकाशित की गई थी।

उन्हें पुरस्कार देते हुए स्वीडिश ऐकेडेमी ने कहा :

"शक्तिशाली भावनाओं से प्रेरित इनके काव्यमय गीतों के लिए, जिन्होंने गेब्रीला मिस्त्राल के नाम को सम्पूर्ण लेटिन अमेरिकी जगत् की आदर्शमय आकांक्षा का प्रतीक बना दिया है, यह पुरस्कार दिया जा रहा है।"

प्रमुख कृतियां

1. ला वाज़ डे एल्गुई
2. सानेट्स आफ डेथ
3. टर्नुरा
4. डेसोलासियों
5. डोलोक

नेली साख्श

(1891-1970)

साहित्य में 1966 का नोबल पुरस्कार दो इज़राइली साहित्यकारों को संयुक्त रूप से दिया गया। इन विजेताओं में एक थे, सैमुअल जोसेफ एग्नान और दूसरी थीं, कुमारी नेली साख्श। प्रथम गद्य लेखक, दूसरी कवयित्री। और संयोग कि दोनों की मृत्यु सन् 1970 वर्ष में हुई, जब कि पुरस्कार के समय एग्नान नवासी वर्ष के थे, नेली साख्श पचहत्तर वर्ष की।

नेली साख्श का जन्म 10 दिसम्बर (नोबल दिवस), 1891 को बर्लिन में हुआ, एक धार्मिक यहूदी परिवार में। पिता जर्मनी के बड़े उद्योगपतियों में गिने जाते थे। तब कौन कल्पना कर सकता था कि सुविधाओं की गोद में पल रही यह बच्ची एक महान प्रतिभा को अपने भीतर छिपाए है और बड़ी होकर सताए हुए लोगों की संवेदना में गीत गाएगी।

सत्रह वर्ष की आयु में नेली साख्श की पहली कविता प्रकाशित हुई। फिर इनकी कलम ने थोड़े ही समय में पाठकों का मन जीत लिया। प्रारम्भ में छोटे-छोटे किस्से-कहानियां भी लिखे। सन् 1921 में जब उनकी कविताओं का 'आख्यायिकाएं' शीर्षक से पहला संग्रह प्रकाशित हुआ तो इस संग्रह की रचनाओं का सर्वत्र स्वागत हुआ। प्रसिद्ध पत्रिकाओं में उनपर लेख लिखे गए। साहित्यिक दिग्गजों ने नई पौध की इस प्रतिभा को सम्मान की दृष्टि से देखा। हिटलर के उत्थान से पूर्व इनकी रचनाएं काफी लोकप्रिय हो चली थीं। हिटलर-काल में उनकी गणना देश के प्रसिद्ध और गण्यमान्य साहित्यकारों में होने लगी थी। पर हिटलर की शक्ति बढ़ते ही उन्हें जर्मनी से भागना पड़ा। उनके परिवार के कितने ही सदस्य गत विश्वयुद्ध में जर्मनी यातना-शिविर की भेंट चढ़ चुके थे। फिर भी जर्मन की नई

पीढ़ी पर नेली साखश का विश्वास खंडित नहीं हुआ। इज़राइल में आकर उन्होंने शान्ति और आस्था से भरे जिन गीतों की रचना की है, वे साहित्य की अमूल्य निधि माने जाते हैं। मानव के पैशाचिक कृत्यों के प्रति विरोध प्रकट करते हुए भी उनके स्वर में कहीं आक्रोश या कटुता नहीं है।

1940 में हिटलर की यहूदी-विरोधी नीति के कारण इन्हें सदा के लिए जर्मनी छोड़कर स्वीडन में बसना पड़ा, जर्मनी छोड़ते समय इनकी बहुत-सी रचनाएं अस्त-व्यस्त या नष्ट हो गई थीं। लेकिन समीक्षकों की राय में, नाज़ी अत्याचारों से पूर्व नेली साखश की कविता सामान्य स्तर से बहुत ऊंची नहीं उठ पाई थी, जब कि इन अत्याचारों की झंझोड़ ने उनकी कविता को आंच में तपे सोने-सा निखारकर चमका दिया। उनकी कविता सामान्य से असामान्य और राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय हो गई।

स्वीडन आकर उन्होंने 'यहूदी-यातनाओं' की अनेक कविताएं लिखीं, जिनमें इज़राइल के भाग्य की मर्मस्पर्शी व्याख्या है। इसके पूर्व की उनकी कविताओं, जिनमें दिल को गहराई तक छूने वाले प्रेम-गीतों और रुला देने वाले विरह-गीतों की भरमार है, का भी जर्मनी के शृंगार-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। पर बाद की रचनाएं मानवीय संवेदना और उच्च आध्यात्मिक आदर्शों से प्रेरित होने के कारण अधिक प्रौढ़, सशक्त और गहन हैं। इन रचनाओं को 'मानव-आत्मा का स्वच्छ दर्पण' कहा गया है और इनकी रचयिता नेली साखश को 'विराट् की कवयित्री'।

नेली साखश की भाषा प्रौढ़ और प्रांजल है तथा भावनाएं समयातीत। राष्ट्रभक्ति, मानवीय संचेतना, आध्यात्मिक चिन्तन, कहीं-कहीं संतों का-सा स्वीकार भाव और इन सब की करुणामय भावाभिव्यक्ति के कारण उनका नाम विश्व के महान साहित्यकारों में लिया जाने लगा है। यों तो नोबल पुरस्कार से सम्मानित सभी साहित्यकार महान हैं, पर सूली प्रूधों, थ्योडोर मामसन, रुडयार्ड किपलिंग, रोम्या रोलां, यूजेन ओ नील, जार्ज बर्नार्ड शा, पर्ल बक, जॉन गाल्सवर्दी, आन्द्रे ज़ींद, बर्ट्रेण्ड रसेल, अल्बेयर कामू, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, बोरिस



नेली साख्श
1966 में साहित्य पर नोबल पुरस्कार

पास्तरनाक की तरह सभी सुपरिचित नहीं। नेली साख्श को इन्हींकी पंक्ति में बैठाया जा सकता है।

नाज़ियों द्वारा यहूदियों पर किए जाने वाले अत्याचार, गैस-चेम्बर की घुटन और कन्सण्ट्रेशन कैंप के दृश्य, सत्तामद और रक्त-पिपासा की अंधी दौड़, युद्ध की विभीषिका और अमानवीय कृत्यों के शिकार स्त्री-पुरुष-बच्चों की कराह—सभी कुछ उनकी रचनाओं में है। पर गहन पीड़ा के बावजूद कहीं भी वे तिक्त नहीं हो पातीं। अपराधियों को उन्होंने बदले की भावना से नहीं, दया की दृष्टि से देखा है। संसार से पैशाचिक मनोवृत्ति को दूर करने के लिए उन्होंने उदात्त भावनाओं के प्रसार और आध्यात्मिक साधना पर बल दिया है। पर उनकी रचनाएं कमज़ोरी, पराजय और पलायनवाद के प्रभाव से मुक्त हैं। उनका लेखन पीड़ाबोध के साथ-साथ मानव-चिन्तन को समर्थ और आश्वस्त बनाता है। मृत्यु से परे पहुंचने की आकांक्षा और मृतकों के ढेर के बीच भी आशा और आस्था से महकती भविष्योक्तियां उनकी रचनाओं की अनूठी विशेषता हैं। प्रोफेसर गर्शोम रडेम के लेखन से प्रभावित नेली साख्श ने सामाजिक समस्याओं के समाधान को आध्यात्मिक निर्देशों के साथ बड़ी खूबी से जोड़ा है। स्वयं नेली के शब्दों में, "प्रोफेसर गर्शोम की 'जोहर' और 'कव्वाला' का अध्ययन मेरे लिए प्रेरणा बना है।"

नेली साख्श ने समकालीन स्वीडिश कविता का जर्मन में अनुवाद भी किया है। वे स्वयं हिब्रू और जर्मन दोनों भाषाओं में मौलिक काव्य-रचना करती थीं। यद्यपि नेली साख्श स्वीडन में बस गई थीं पर उनकी रचनाओं का इज़राइल में उतना ही सम्मान है जितना एग्नान का। एग्नान गद्यशैली के लिए विख्यात हैं, नेली सरस काव्य-रचना के लिए। इज़राइल के दुखी व असहाय लोगों के प्रति उनकी सहानुभूति सदा बनी रही और वे समय-समय पर उनकी सहायता भी करती रहीं। अपने प्रवासी देश और इज़राइल की दूरी का अहसास उन्हें सदा बना रहा, "सबके पास अपना एक घर है, जब कि मैं संसार के एक छोर पर लटकी हूं।" इसके बावजूद इज़राइल की संस्कृति से वे कभी दूर नहीं हुईं।

युद्धकाल में स्वयं भोगी हुई पीड़ा ने उन्हें जीवन-भर विनम्र, साहसी और मौन साधक बनाए रखा। दुःख ने उन्हें कटु बनाया, न उनकी रचनाओं को। यह उनकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

"सोऊंगी उन चट्टानों पर
जिन पर टिकी हैं
सपनों की जड़ें
और अपनेपन की
मांग की सीढ़ियां
जो मृत्यु से ऊपर जाती हैं।"

और—

"संसार के द्वारों पर परित्यक्त
मेरे भाइयो और बहनो,
मैं तुम्हारे लिए युद्ध के गीत नहीं गाऊंगी,
सिर्फ बहते हुए रक्त को रोकूंगी
और जमे आंसुओं को
पिघला कर बहा दूंगी।"

प्रतिभा के विकास के लिए विशेष परिवेश की आवश्यकता होती है। नाज़ी-अत्याचार और यहूदी-धैर्य के परिवेश ने और भोगी हुई पीड़ा ने नेली साख्श के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को चमका दिया था। जर्मन लोगों ने जर्मन धरती की इस बेटी को अपना भरपूर प्यार दे मानो हिटलर के ज़ुल्मों का प्रायश्चित कर लिया है। 'जर्मन बुक ट्रेड' के शान्ति-पुरस्कार व अन्य कई अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त हुए थे। स्वीडिश ऐकेडेमी ने उन्हें पुरस्कार देते हुए कहा :

"इनकी उच्चकोटि की संगीतमय रचनाओं के लिए, जिनमें इज़राइल के भाग्य का आस्थापूर्ण सशक्त उल्लेख है, इन्हें यह पुरस्कार दिया जा रहा है।"

प्रमुख कृतियां

1. हैबिटेशन्स आफ डेथ
2. एक्लिप्स आफ द स्टार्स

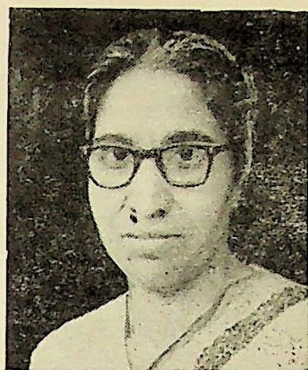
3. नोबाडी नोज़ एनीथिंग
4. नाइट वाघ
5. दि मैजिक डांसर
6. अब्राहम इन साल्ट

• • •

जे० पी० प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित

1345

,
र
ा
ी
ा
ी
स
ा-
के
र
में
क
र्ण
ण
र
क



श्रीमती आशारानी व्होरा (जन्म 7 अप्रैल, 1921) हिन्दी की सुपरिचित लेखिका और पत्रकार हैं। एक लम्बे अर्से से श्रीमती व्होरा की रचनाएं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं।

समाज शास्त्र में एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त श्रीमती व्होरा बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं और उद्देश्यपूर्ण लेखन में विश्वास रखती हैं।

सन् 1946 से 64 तक शिक्षा व समाज-कल्याण के विविध क्षेत्रों में सक्रिय रहने के बाद अब नियमित रूप से स्वतंत्र लेखन कर रही हैं।

उन्होंने महिला उपलब्धियों के क्षेत्र में मिशन के रूप में कार्य किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कार्य करके मनुष्य के कल्याण में योगदान देने के उपलक्ष्य में नोबल पुरस्कार से सम्मानित महिलाओं की रोचक और प्रेरक जीवन-झांकियां प्रस्तुत की हैं।

जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा

इन्दिरा गांधी : सफलता के वर्ष	के० ए० अब्बा...
भारत की अग्रणी महिलाएं	आशारानी व्होरा
रूसी सफरनामा	बलराज साहनी
मेरी फिल्मी आत्मकथा	बलराज साहनी
पाकिस्तानी जेलों में तीन वर्ष	त्रिलोकचन्द्र
क्या भूलूं क्या याद करूं (आत्मकथा : भाग–1)	बच्चन
नीड़ का निर्माण फिर (आत्मकथा : भाग–2)	बच्चन
पंत के सौ पत्र : बच्चन के नाम	सं० बच्चन
बच्चन के पत्र : निरंकारदेव 'सेवक' के नाम	
मेरा जीवन-संघर्ष	वेद मेहता
यादें	पद्मिनी मेनन
आवारा मसीहा	विष्णु प्रभाकर
सरदार पटेल	सेठ गोविन्ददास
देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद	सेठ गोविन्ददास
लालबहादुर शास्त्री	महावीर अधिकारी
राष्ट्रपति राधाकृष्णन्	अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार
नोबल पुरस्कार-विजेता साहित्यकार	ठाकुर राजबहादुर सिंह
सिख धर्म के दस गुरु	बी० एस० गुजराती
भारत के वीर सपूत	सावित्रीदेवी वर्मा
हमारे वीर सेनानी	सुदर्शन चोपड़ा